दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 8

ताहि उर आन रे!

(कवित्त)

ज्ञान में है ध्यान में है वचन प्रमाण में है,
अपने सुथान में है ताहि पहिचान रे।
उपजे न उपजत मूए न मरत जोई,
उपजन मरन व्योहार ताहि मान रे॥
रावसो न रंकसो है, पानी सो न पंकसो है,
अति ही अटंकसो है ताहि नीके जान रे।
आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै,
ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहि उर आन रे॥

[– भैया भवगतीदास]

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

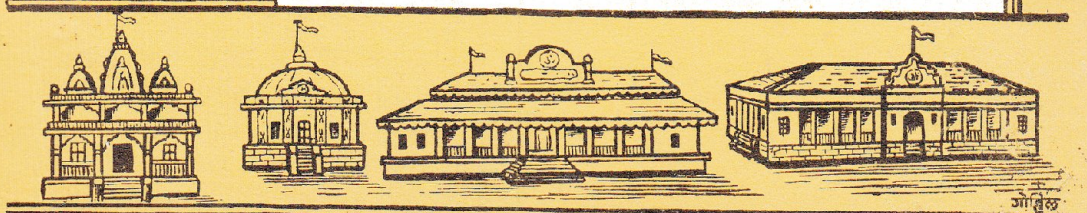

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

दिसम्बर : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (320) एक अंक 25 पैसा [मार्गशीर्ष : 2498

समयसार का प्रारंभ

अर्थात्

साधकभाव का प्रारंभ

समयसार का मंगलाचरण अर्थात् शुद्धात्मा के ध्येय से आत्मा में सिद्धभगवंतों की स्थापना करके अपूर्व साधकभाव का मंगलाचरण

मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी के दिन पूज्य श्री कानजीस्वामी ने श्री समयसार शास्त्र पर सत्रहवीं बार प्रवचनों का मंगल प्रारंभ किया। आनंदोल्लासमय वातावरण में स्वानुभूति से प्रकाशित ऐसे अचिंत्य चैतन्यतत्त्व के शांत अध्यात्मरस की सरिता बहने लगी... मानों अनंत सिद्धभगवंतों के सम्मेलन में आराधकभाव का महोत्सव प्रारंभ हुआ। मधुर चैतन्यरस का मंथन करते-करते मंगलाचरण में देव-शास्त्र-गुरु को नमस्कार करते हुए स्वामीजी ने कहा कि—

'ॐ' जिनभगवान की दिव्यध्वनि है, उसके वाच्यरूप शुद्ध-आत्मदेव है। चैतन्य-महाराजा अपनी स्वानुभूति द्वारा अंतर में शुद्धतारूप प्रगट हुआ, वह भाव 'ॐ' है; और जहाँ चैतन्यराजा ऐसी शुद्धिरूप जागृत हुआ, वहाँ तीर्थंकररूप में शरीर में से 'ॐ' ध्वनि प्रगट होती है; उसका वाच्य शुद्ध आत्मा है, वह दिव्यशक्तिवान देव है; उसे नमस्कार हो!

अहा, भगवान की ॐ ध्वनि का वाच्य ऐसा जो मेरा शुद्ध आत्मा, उसमें मैं नमा हूँ—और नमता हूँ। ऐसे अपूर्व मंगलाचरणसहित समयसार प्रारंभ होता है।

भाव-सरस्वती अर्थात् अंतर में आत्मा के स्वसंवेदनरूप ज्ञानधारा, उस अतीन्द्रिय ज्ञानधारा का प्रवाह मिथ्यात्वादि सर्व कलंक को धो डालता है;

[—शेषांश टाइटिल पृष्ठ 3 पर देखें]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

दिसम्बर : 1971 ☆ मार्गशीर्ष : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 8

निर्वाण का मार्ग योग-भक्ति

अरे जीव! दु:खी होकर इस भव वन में भटकते हुए तूने एकबार भी अपने आनंदमूर्ति आत्मा की प्रतीति नहीं की। आत्मा को लक्ष में लेकर उसका अनुभव करे तो तुझे मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो और तेरे भवों का अंत आ जाये। अरे, मनुष्यभव पाकर भी यदि मोक्ष का उपाय नहीं किया तो तूने किया क्या? इस मनुष्य-जन्म में करनेयोग्य तो यही एक कार्य है। जो शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे तो बाह्यभाव हैं, उनसे चैतन्य की प्राप्ति नहीं होती, परंतु ज्ञान को अंतर्मुख करके ज्ञानानंदस्वरूप के साथ जोड़ने से वीतराग समतारस प्रगट होकर चैतन्यसुख का अनुभव होता है और ऐसी दशा, वह भव के अंत का उपाय है। इसलिये उपयोग को आत्मोन्मुख करके तू ऐसी सर्वश्रेष्ठ योग-भक्ति कर..! समस्त तीर्थंकर भगवंत ऐसी उत्तम योग-भक्ति द्वारा ही निर्वाण को प्राप्त हुए हैं... तू भी ऐसी योग-भक्ति द्वारा उसी मार्ग पर चल!

मोक्षमहल की पहली सीढ़ी

सम्यग्दर्शन

हे जीव! दुनिया की बात छोड़; दुनिया को दुनिया में रहने दे; तू अपने आत्मा की प्रतीति करके अपना हित साध ले। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी दुनिया को खबर नहीं है; वह किसी को इन्द्रियज्ञान से दिखायी दे, ऐसा नहीं है। अहा, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में मोक्ष की मुहर लग गई और परम सुख का भंडार खुल गया... उसका तो जो अनुभव करे, उसे सच्ची खबर पड़ती है। ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीव! तुम धारण करो, बहुमानपूर्वक उसकी आराधना करो! हे सुज्ञ! समझदार आत्मा! तू समझ, तू चेत, तू सावधान हो, और प्रमाद छोड़कर शीघ्र सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यह उत्तम अवसर है; इसलिये एक क्षण भी खोये बिना अपने आत्मा की अखंड अनुभूतिसहित श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन का दीप प्रज्वलित कर। हे भव्य! हे सुख के अभिलाषी मुमुक्षु! मोक्षसुख का कारणभूत ऐसा उत्तम कार्य तू शीघ्र कर!

सम्यग्दर्शन की अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढाल के अंतिम छंद में उसकी अत्यंत प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव! तू काल गँवाये बिना इस पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर!

अहा, सम्यग्दर्शन का स्वरूप अचिंत्य है! हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर अत्यंत महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर... जरा भी काल गँवाये बिना तू सावधान हो और उसे प्राप्त कर; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष की पहली सीढ़ी है; ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्दर्शन से रहित सर्व ज्ञातृत्व और सर्व आचरण, वह

मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है; इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन का सच्चा उद्यम कर। यदि इस भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्य भव और जिनधर्म का ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

मोक्षरूपी महल में पहुँचने के लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है, उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ (श्रावकपना, मुनिपना आदि) नहीं होती। नसैनी की पहली सीढ़ी जिससे नहीं चढ़ी जाती, वह बाकी सीढ़ियाँ चढ़कर मोक्ष में कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शन के बिना सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव, वे कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं हैं, वह तो संसार में उतरने का मार्ग है। राग को जिसने मार्ग माना, वह तो संसार के मार्ग में है; राग के मार्ग पर चलकर कहीं मोक्ष में नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा, वह मोक्षरूपी आनंदमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धता के बिना पूर्ण शुद्धता के मार्ग पर कहाँ से पहुँचा जायेगा? अशुद्धता के मार्ग पर चलने से कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है?—मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परंतु वह तो जीव के ज्ञानादि गुणों की पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है; उसका पहला कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है; उस पूर्णता के ध्येय से पूर्ण के ओर की धारा उल्लसित होती है; बीच में रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परंतु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्ष की सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्रादि की शुद्धि का मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग, वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है; राग का फल सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन का फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतरागस्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभव में नहीं आता; परंतु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन होता है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरण के नाश के उपाय में तथा मोक्ष के परमानंद की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी है, उसके बिना ज्ञान का ज्ञातृत्व या शुभराग की क्रियाएँ, वह सब निरर्थक हैं। उससे धर्म का फल जरा भी नहीं आता; इसलिये वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वों की मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञातृत्व या

पंचमहाव्रतादि शुभ आचार, वह कोई राग आत्मा के सम्यग्दर्शन के लिये किंचित् कारणरूप नहीं है; विकल्प की सहायता द्वारा कभी निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्वादि की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है, इतनी उसकी मर्यादा है, परंतु वह व्यवहार है, इसलिये उसके कारण निश्चय है-ऐसा नहीं है। व्यवहार के जितने विकल्प हैं, वे सब आकुलता और दु:ख हैं, आत्मा के निश्चयरत्नत्रय ही सुखरूप और अनाकुल हैं। ज्ञानी को भी विकल्प, वह दु:ख है; विकल्प द्वारा कहीं आत्मा का कार्य ज्ञानी को नहीं होता; उसी समय उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि अपने आत्मा के अवलंबन से उसको वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चयसहित जो व्यवहार हो] वह व्यवहाररूप से सच्चा है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या चारित्र में यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शन के बिना सब झूठा ?—हाँ, मोक्ष के लिये वह सब निरर्थक है; धर्म के लिये वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञान की बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण द्वारा न्याय समझाये, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओं द्वारा लोक में वाहवाह हो, परंतु सम्यग्दर्शन के बिना उसका ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्मा का किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं, आत्मा का सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे सम्यग्दर्शन के बिना कैसे हैं ?—तो कहते हैं कि वे सम्यक्ता को प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किंतु मिथ्या है, उनके द्वारा मोक्षमार्ग नहीं सधता। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिये वह धर्म का मूल है।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीवो! तुम धारण करो, बहुमानसहित उसकी आराधना करो! हे सयाने आत्मा! तू चेत, समझ और काल गँवाये बिना शीघ्र ही उस सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर। यह उत्तम अवसर है, फिर यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। हे भव्य! हे सुखाभिलाषी! सुख के लिये तू इस उत्तमकार्य को शीघ्र कर!—शीघ्र अपने आत्मा को पहिचान।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी कहा है कि—('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्मा के सर्व गुणों की पूर्णशुद्धता, सो मोक्ष है।

('सर्वगुणांश सो सम्यक्त') आत्मा के सर्व गुणों की अंशत: शुद्धता, सो मोक्षमार्ग है।

आत्मा में जैसा ज्ञानानंदस्वभाव त्रिकाल है, वैसा पर्याय में प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका कारण, वह मोक्षमार्ग है; उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है ? कि—

'परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है।'

परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि, सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये। मैं ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा हूँ; शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हुआ, उस काल शास्त्राभ्यास या संयम न हो, तथापि मोक्षमार्ग प्रारंभ हो जाता है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—'अनंतकाल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।'

ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप इस जीव ने अनंतकाल में नहीं समझा और विकार को ही आत्मा मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। अधिक किया तो पाप छोड़कर शुभराग में आया परंतु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है और उसके अनुभव से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। **'भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी'**—भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है। सर्व तत्त्वों के सच्चे निर्णय का समावेश सम्यग्दर्शन में होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणों में रागादि का अंधकार नहीं है; शुभाशुभराग, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना, सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि—अनंतकाल संसार में भटकता हुआ जीव दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं कर सका—एक तो जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्य में तो जिनवरस्वामी मिले परंतु स्वयं उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना, इसलिये उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले—ऐसा कहा है। जिनवर का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन

द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया, तब ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिये हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने से चारित्र भी सच्चा हुआ; इसलिये कहा कि—

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥

धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किंतु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा देते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चय सम्यक्त्व को तू शीघ्र धारण कर; काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट कर। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्यबंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है; और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी कहीं राग, वह मोक्षमार्ग नहीं है; रागरहित जो रत्नत्रय, वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है, उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है; निश्चय सम्यग्दर्शन, वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्प से भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना, वह सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है; इसलिये शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण करने का उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्व की ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः-पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घ संसार में परिभ्रमण का कहीं अंत नहीं आयेगा... इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्याय को संभालो! उसे अंतर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। अपनी पर्याय के कर्ता तुम हो; भगवान तो तुम्हारी पर्याय के दृष्टा हैं परंतु कर्ता नहीं हैं, कर्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन-पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है, उसे जाने बिना अनंत बार यह जीव स्वर्ग में गया, परंतु वहाँ किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, संसार में ही भटका। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को

करोड़ों जन्म तक तप करने से जो कर्म खिरते हैं, वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में टल जाते हैं, इसलिये कहा है कि—'ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन...'

तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख का अंशमात्र भी अनुभव नहीं होता, अर्थात् धर्म नहीं होता।

जो समझदार है, जो आत्मा को भवदुःख से छुड़ाने तथा मोक्षसुख के अनुभव के लिये सम्यक्त्व का पिपासु है, ऐसे भव्य जीव को संबोधन करके सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देते हैं कि—अरे प्रभु! यह तेरे हित का अवसर आया है, तू कोई मूढ़ नहीं किंतु समझदार है, सयाना है, हित-अहित का विवेक करनेवाला है, जड़-चेतन का विवेक करनेवाला है; इसलिये तू श्रीगुरु का यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरंत सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलंब न कर। शरीरादि से भिन्न आत्मा का अनुभव कर, उसका तीव्र उद्यम कर।

'समझ, सुन, चेत, सयाने!' हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलंब सम्यक्त्व को धारण कर। मोह का अभाव करके सावधान हो, और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को चेत... उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ परमात्मा में जो है, वह सब तेरे आत्मा में भी है—ऐसा जानकर प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृग की भाँति बाह्य में मत ढूँढ़, अंदर है, उसे अनुभव में ले।

संसार में भटकते-भटकते अनंतकाल में बड़ी कठिनाई से यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ; उसमें ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्व का ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसर को व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यमपूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियों में तूने बहुत दुःख सहे, अब उन दुःखों से छूटने के लिये आत्मा की यह बात सुन। यह तेरा समझने का काल है, सम्यग्दर्शन का अवसर है, इसलिये इसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा संबोधन किया है! [भोगभूमि में भी भगवान ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर मुनिराज ने ऐसा कहा था कि—हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्व को ग्रहण कर... तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एषते'... और सचमुच उस जीव ने तत्क्षण ही

सम्यग्दर्शन प्रगट किया।] उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि—हे भव्य! तू अविलंब—इसी समय सम्यक्त्व को धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है, उतना ही तू है; अजीव से तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्व से भी आत्मा का स्वभाव भिन्न है; ऐसे आत्मा की प्रतीति बिना अनंतकाल व्यर्थ गँवा दिया, परंतु अब यह उपदेश सुनने के बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना; एक-एक क्षण अति मूल्यवान है, बहुमूल्य मणिरत्नों की अपेक्षा मनुष्यभव महँगा है और उसी में इस सम्यग्दर्शन-रत्न की प्राप्ति महादुर्लभ है। अनंतबार मनुष्य हुआ और स्वर्ग में भी गया परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सका—ऐसा जानकर अब तू व्यर्थ काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन प्रगट कर। उद्यम करे तो तेरी काललब्धि पक ही गई है... पुरुषार्थ से काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिये हे भाई! इस अवसर में आत्मा को समझकर उसकी श्रद्धा कर!

पर के कार्य तेरे नहीं हैं और परवस्तु तेरे काम की नहीं है; आनंदकंद आत्मा ही तेरा है, उसी को काम में ले, श्रद्धा-ज्ञान में ले। परवस्तु या पुण्य-पाप तेरे हित के काम नहीं आयेंगे, अपने ज्ञानानंदस्वभाव को श्रद्धा में ले, वही तुझे मोक्ष के लिये कार्यकारी हैं। समयसार में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। जिसप्रकार माता बच्चे का पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि 'मेरा मुन्ना बड़ा सयाना...' उसीप्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है... तू सयाना-समझदार है, इसलिये मोह छोड़कर जाग और अपने आत्मस्वभाव को देख... आत्मस्वभाव का सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मोक्ष अवश्य होगा। तेरे गुणगान करके संत तुझे जगाते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं।

आत्मा अखंड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है; पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उनमें स्व-पर की जानने की शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपने को तथा पर को भी जाने, ऐसा चेतकस्वभावी है।—ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शन से रहित सब एकरहित शून्य के समान हैं, धर्म में उसका कोई मूल्य नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अंतर में चैतन्य के शांतरस का वेदन है। अहा, उस शांति के अनुभव की क्या बात! श्रेणिक राजा वर्तमान में नरकगति में होने पर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से वहाँ के दुःख से भिन्न ऐसे चैतन्यसुख का वेदन भी उनको वर्त रहा है।

पहले मिथ्यात्वदशा में महापाप से उन्होंने सातवें नरक की असंख्यवर्ष की आयु का बंध कर लिया, परंतु बाद में महावीरस्वामी के समवसरण में वे क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त हुए और सातवें नरक की आयु तोड़कर पहले नरक की मात्र 84000 चौरासी हजार वर्ष की आयु कर दी। वे राजगृही के राजा गृहस्थाश्रम में अव्रती थे, तथापि क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; नरकगति नहीं बदल सकी परंतु उसकी स्थिति तोड़कर असंख्यातवें भाग कर दी। नरक की घोर यातनाओं के बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शन परिणति के सुख का वह आत्मा वेदन कर रहा है। 'बाहर नारकीकत दुःख भोगै, अंतर सुखरस गटागटी।'—इसप्रकार सम्यग्दर्शनसहित जीव नरक में भी सुखी है, और सम्यग्दर्शन के बिना तो स्वर्ग में भी दुःखी है। श्री परमात्मप्रकाश में कहा है कि—सम्यग्दर्शनसहित तो नरकवास भी अच्छा हे और सम्यग्दर्शन से रहित देवलोक में निवास भी अच्छा नहीं... अर्थात् जीव को सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकारी है, इसके बिना जीव को कहीं सुख नहीं है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आत्मरस का वेदन है; देवों के अमृत में भी उस आत्मरस का सुख नहीं है। मनुष्य जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन से ही है, स्वर्ग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, तीन लोक में सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शनसहित हों, तभी श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं।

जय हो सम्यग्दर्शन धर्म की....!

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[श्री समयसार-नाटक के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन]

(लेखांक - 7)

जिनशास्त्रों में कहे हुए सात तत्त्वों में से जीवतत्त्व का वर्णन चल रहा है। उसमें जीव के समता, रमता, ऊर्ध्वता, ज्ञायकता आदि स्वभावों का वर्णन किया; अब सुखस्वभाव का वर्णन करते हैं। सुख किन्हीं बाह्य संयोगों में नहीं है, सुख तो जीव का ही स्वभाव है। सुख जिसका स्वभाव है, वह जीव है। 'मैं सुखी हूँ'—ऐसा भास जीव में ही है, अन्य किसी पदार्थ में वैसा सुख का भास नहीं है।

'सुखभास' के अर्थ में जीव के सुखस्वभाव की सिद्धि करते हुए श्रीमद् राजचंद्रजी ने लिखा है:—शब्दादि पाँच विषयसंबंधी अथवा समाधि आदि योग संबंधी जिस स्थिति में सुख संभवित है, उसे भिन्न-भिन्न करके देखने पर अंत में मात्र उन सबमें सुख का कारण एक ही ऐसा यह जीवपदार्थ संभव है; इसलिये तीर्थंकरदेव ने वह सुखभास नाम का लक्षण जीव का कहा है, और व्यवहार के दृष्टांत द्वारा वह निद्रा से प्रगट ज्ञात होता है।

जिस निद्रा में अन्य सर्व पदार्थों से रहितता है, वहाँ भी 'मैं सुखी हूँ'—ऐसा जो ज्ञान है, वह शेष रहे जीवपदार्थ का है, अन्य कोई वहाँ विद्यमान नहीं है और सुख का आभास तो अत्यंत स्पष्ट है। इसप्रकार सुख का भास होनेरूप लक्षण भगवान ने जीव नामक पदार्थ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देखा। (बाह्यविषयों से रहितता समझाने के लिये यहाँ निद्रा अवस्था का दृष्टांत है।)

जीव स्वयं सुखस्वरूप है, लेकिन जो जीव अपने सुख को भूल गया है, वह अज्ञान से पाँच इन्द्रियों के विषयरूप बाह्यपदार्थ में सुख की कल्पना करता है। उस सुख की कल्पना करनेवाला स्वयं सुखमय ही है। पाँच इन्द्रियों के जड़-विषय ज्यों के त्यों विद्यमान हों लेकिन

यदि जीव न हो तो ?—तो उनमें सुख की कल्पना कौन करे ? विषय ज्यों के त्यों होने पर भी जीव के बिना वहाँ सुख का भास नहीं होता, इसलिये विषय सुखरूप नहीं; सुख का भास जीव करता है और वह स्वयं ही सुखरूप है। बाह्य में कोई भी विषय न हों अथवा वे विषय विद्यमान होने पर भी उनमें किसी ओर उपयोग न हो, तथापि 'मैं सुखी हूँ'—इसप्रकार जीव स्वयं अकेला अपने में अनुभव कर सकता है। इसलिये विषयों की अपेक्षा बिना जीव स्वयं स्वभाव से ही सुखलक्षणरूप है। भाई, ऐसे अपने स्वरूप का विचार तो कर... तुझे अपने में ही अपना सुख भासित होगा।

तथा जीव में 'वेदकता' है। वेदकता अर्थात् क्या ? वह कहते हैं:—यह फीका है, यह मीठा है, यह खट्टा है, यह खारा है, मैं इस स्थिति में हूँ, ठंड से पीड़ित हूँ, दु:ख का अनुभव करता हूँ—ऐसा जो रस-स्पर्श आदि विषयों का स्पष्ट ज्ञान-वेदनज्ञान-अनुभवज्ञान-अनुभवपना वह यदि किसी में हो तो वह इस जीवपद में है; अथवा पदार्थ का ऐसा ज्ञान जिसका लक्षण है, वह जीव है।

जड़ पदार्थों में कोई वेदकता नहीं, जड़ से भिन्न ऐसा जीव ही वेदकस्वभाववाला है। स्वभाव के आनंद का वेदन करे-अनुभव करे, उसमें तो बाह्य-विषयों की अपेक्षा नहीं, और बाह्य में हर्ष-शोकादिभाव को करता हुआ अज्ञानी जीव जड़पदार्थों के रस, गंध, आदि का वेदन करना मानता है। परंतु यहाँ तो इतना बतलाना है कि ऐसी वेदकता जीव में ही है, अन्य में नहीं। इसप्रकार पर से भिन्न ऐसे जीवतत्त्व की पहिचान कराई है।

'चैतन्यता' द्वारा जीव में स्पष्टता-प्रकाशकता है। अनंत-अनंत कोटि तेजस्वी दीपक-मणि-चंद्र-सूर्यादि की कांति जिसके प्रकाश के बिना प्रगट होने में समर्थ नहीं है, अर्थात् वे सब स्वयं अपने को जानने अथवा ज्ञात होनेयोग्य नहीं है, जिस पदार्थ के प्रकाश में चैतन्यता से वे पदार्थ जाने जाते हैं—प्रकाशित होते हैं—स्पष्ट भासित होते हैं, वह पदार्थ जो कोई है, वह 'जीव' है। इसलिये स्पष्ट प्रकाशमान-अचल ऐसा निराबाध चैतन्य, वह 'जीव' है, और उस 'जीव' के प्रति उपयोग लगाने से प्रगट-स्पष्टरूप दिखाई देता है।

देखो, यह चैतन्यस्वरूप आत्मा का स्वसंवेदन-प्रत्यक्षपना बताया है। आत्मा में ऐसा सामर्थ्य है कि स्वयं अपने को जाने और दूसरों को भी जाने। आत्मा किसप्रकार जानने में आता

है कि आत्मा में उपयोग को उन्मुख करने से ही आत्मा जानने में आता है, अन्य किसी प्रकार से ज्ञात नहीं होता। आत्मा की ओर जो उपयोग लगा, वह उपयोग राग से भिन्न है अर्थात् राग, वह कोई आत्मज्ञान का या धर्म का साधन नहीं।

जगत में आत्मा के अतिरिक्त जो कोई पदार्थ हैं, उन किसी में स्व-पर को जानने का सामर्थ्य नहीं है। सूर्य-चंद्र आदि का जड़ प्रकाश होने पर भी पदार्थों को तो ज्ञान ही जानता है, वह जड़ प्रकाश कहीं पदार्थों को नहीं जानता; उस प्रकाश का भी प्रकाशक तो यह चैतन्यप्रकाशी आत्मा ही है।

अहा, चैतन्यप्रकाशी आत्मा कोई अद्भुत वस्तु है। अंतर में मनन करके स्वानुभव द्वारा उसे जान लेना आवश्यक है—

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।
बीजुं कहीए केटलुं ? कर विचार तो पाम॥

देखो, इसमें भी श्रीमद् राजचन्द्रजी ने जीव का सुंदर वर्णन किया है। शुद्ध कहकर शुद्धद्रव्य बताया, बुद्ध कहकर ज्ञानस्वभाव बताया, चैतन्यघन कहकर असंख्य प्रदेश से अखंडपना बताया, स्वयं ज्योति कहकर स्वसंवेदनप्रत्यक्षपना दर्शाया और सुखधाम कहकर अतीन्द्रिय आनंदस्वभाव का भंडार स्वयं है-ऐसा बतलाया। ऐसा आत्मा स्वानुभूतिगम्य है। वचन से कितना कहा जाये ? स्वयं अंतरविचार करके स्वानुभव करे, तभी उसकी खबर पड़ती है, वचन के विकल्प से पार नहीं पाया जा सकता।

श्रीमद् स्वयं कहते हैं कि तू अपनी ओर देख, हमारी ओर देखने से आत्मा समझ में नहीं आयेगा। देखो 16 वर्ष की छोटी सी उम्र में भी कितना सुंदर लिखते हैं:—

हे जीवो!

स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से बनो।

स्वद्रव्य के व्यापक शीघ्रता से बनो।

स्वद्रव्य के धारक शीघ्रता से बनो।

स्वद्रव्य के रमक शीघ्रता से बनो।

स्वद्रव्य के ग्राहक शीघ्रता से बनो।

स्वद्रव्य की रक्षा पर लक्ष रखो।

मैं पर की रक्षा करूँ और पर मेरी रक्षा करे—ऐसी बुद्धि शीघ्र छोड़ो, और पर से भिन्न अपना सहजस्वरूप जो रम्य है, ज्ञायक है, सुखधाम है, उसको अनुभव में लो।

हे जीव! जिसके कारण सब रम्य प्रतीत होता है और जिसके बिना सब सूना लगता है—ऐसा रम्य जीवस्वभाव है, उसमें तू रमक हो, और परद्रव्य की रमकता शीघ्र छोड़।

वाह! देखो तो सही... जीव का स्वभाव! ज्ञानियों ने उसे कितना महत्त्व दिया है... उसकी महिमा प्रगट की है।

मुख्य ऐसा जो 'जाननेवाला' उसके अस्तित्व के बिना किसी भी पदार्थ का अस्तित्व जानने में नहीं आता। ज्ञेयपदार्थों को स्वीकार करे, परंतु उन्हें जाननेवाला मैं हूँ—ऐसे अपने अस्तित्व को स्वीकार न करे तो उसे ज्ञान कौन कहेगा! जाननेवाले की सत्ता है, तब ज्ञेयपदार्थ ज्ञात होते हैं; ज्ञान हो, तभी शरीर ज्ञात होता है; ज्ञान हो, तभी जगत में अरिहंत-सिद्ध आदि ज्ञात होते हैं; ज्ञान हो, तभी विकल्प जानने में आते हैं;—इसप्रकार समस्त पदार्थों को जानने में ज्ञान की उपस्थिति पहले होती है, इसलिये ज्ञानस्वरूपी आत्मा ही सबमें मुख्य है। मुख्य अर्थात् उच्च; उच्च अर्थात् ऊर्ध्व। देखो तो सही, चेतन की महिमा! समस्त पदार्थों को जाने, तथापि सबसे भिन्न रहता है। जगत का सच्चा ईश्वर तो आत्मा ही है कि जिसकी उपस्थिति के बिना किसी पदार्थ का अस्तित्व ज्ञात नहीं होता।

जीव अपने ज्ञायकतारूप लक्षण द्वारा ही जगत के अन्य सर्व पदार्थों से भिन्न जानने में आता है। वह तीनों काल में ज्ञायकता सहित है। तीनों काल में कभी भी ज्ञायकता रहित जीव अनुभव में नहीं आ सकता।

ऐसी ज्ञायकता जीव के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में नहीं होती। अहा, तीर्थंकर भगवान के कहे हुए ऐसे जीवपदार्थ को हे जीवो! तुम अनुभव में लो। सर्वज्ञ परमात्मा ने जीव का ऐसा अद्भुत स्वरूप बताया है, उसे तुम समझो।

ज्ञायकता रहित जीव कभी नहीं होता; शरीररहित जीव होता है, रागरहित जीव होता है,

परंतु ज्ञानरहित जीव का अस्तित्व कभी नहीं होता। 'ज्ञायकता' वह जीव है। सुख कहीं भी हो तो वह ऐसे जीवस्वभाव में ही है। अन्य विषयों में सुख की कल्पना करता है, वह कल्पना करनेवाला कौन है ? वह कल्पना करनेवाला स्वयं ही सुखस्वरूप है। बाह्य में तो कोई सुख है ही नहीं। तन से अतीत, और मन से भी अतीत, अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं सुख का धाम है, उसी में संतों को सुख भासित होता है, अन्य कहीं किंचित् भी सुख भासित नहीं होता। अंतर में जीव के ऐसे विलास को हे जीवो ! तुम जानो।

आनंदमय मोक्षमार्ग

आनंद का मार्ग भी आनंदरूप है। 'मोक्ष' परम आनंदधाम है और उसका मार्ग भी आनंदधाम में ही है। राग तो आकुलता का धाम है, वह कुछ आनंद का धाम नहीं, इससे उसमें 'मोक्षमार्ग' नहीं। जैसे मोक्ष आनंदस्वरूप है, वैसे ही उसका मार्ग भी आनंदस्वरूप है, उसमें राग को स्थान नहीं। राग राग में है, मोक्षमार्ग में नहीं। जो भाव मोक्षमार्गरूप है, उसमें राग का अभाव है। राग आनंददाता नहीं, दु:खदाता ही है; मोक्षमार्ग तो आनंद-दाता है, दु:खदाता नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव की दशा की अद्भुत महिमा
आठ मद के अभाव का वर्णन

सम्यग्दृष्टि जीव की परिणति अचिंत्य है, उसे आठ गुणों का पालन होता है। उन आठ अंग संबंधी कथाएँ आप आत्मधर्म में पढ़ रहे हैं। अब आठ अंगों का भाववाही वर्णन पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों में से यहाँ दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि को पच्चीस दोष नहीं होते; उनमें से आठ मद—कुलमद, जातिमद, रूपमद, विद्यामद, धन अथवा ऋद्धिमद, बलमद, तपमद और ऐश्वर्यमद धर्मी को होते नहीं। उनका भावभीना वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। यह वर्णन छहढाला की तीसरी ढाल के प्रवचनों से लिया गया है।

सम्यग्दृष्टि को अपने अचिंत्य चैतन्यवैभव के समक्ष जगत में अन्य किसी की महानता प्रतीत नहीं होती, इसलिये उसे कोई मद नहीं होता। इसप्रकार उसे आठ मद का अभाव होता है, उनका वर्णन यहाँ करते हैं:—

(1-2) कुलमद तथा जातिमद:—पिता के पक्ष को कुल तथा माता के पक्ष के जाति कहते हैं; लेकिन माता-पिता तो इस जड़ शरीर के संबंधी हैं, उनकी महत्ता में अभिमान क्या ? मैं तो शरीर से भिन्न चैतन्यमूर्ति हूँ; माता-पिता के कारण कहीं मेरा बड़प्पन नहीं है। माता किसी बड़े परिवार की हो या पिता कोई बड़े राजा-महाराजा हों, उनके कारण धर्मी अपना बड़प्पन नहीं मानता, अर्थात् उसे जातिमद या कुलमद नहीं होता। अरे, हमारी जाति तो चैतन्यजाति है; देह की जाति हमारी है ही नहीं, फिर उसका मद कैसा ? मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरे ज्ञानस्वरूप आत्मा को किसी ने उत्पन्न नहीं किया है, फिर मेरी जाति-कुल कैसा ? चैतन्य मेरी जाति और ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही मेरा कुल है। इसप्रकार धर्मी को पिता या पुत्रादि कोई महान हों तो उनका बहुमान उसे नहीं होता; उसीप्रकार पिता आदि दरिद्र हों तो उनसे उसे दीनता नहीं

होती। वह तो इन समस्त संयोगों से अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वरूप ही अपने को देखता है। अरे, मेरे चैतन्य की अधिकता से दूसरा कौन अधिक है—कि जिसका मैं गर्व करूँ? मेरे चैतन्य-प्रकाश के सन्मुख चक्रवर्तीपद भी निस्तेज प्रतीत होता है, उसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। चक्रवर्ती पद तो राग का फल है। कहाँ अनंत गुणमय चैतन्यपद और कहाँ विकार का फल! जिसने परमेश्वर की जातिरूप अपने को देखा है, उसे अब कौन सी कमी रह जाती है कि बाह्य में शरीर की जाति आदि में अपनापन माने? चैतन्य की जाति के समक्ष जड़ शरीर की जाति का अभिमान कैसा? शरीर मैं हूँ ही नहीं, मैं तो चैतन्य हूँ—ऐसी सम्यक् प्रतीति में धर्मी को शरीरादि संबंधी मद नहीं होता। मिथ्यात्वरूप दोष तो धर्मी को होते ही नहीं और सम्यक्त्व के अतिचाररूप दोषों को वह दूर करता है, उसका यह उपदेश है। निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा शुद्ध व्यवहार होता है कि उसमें किंचित् भी अतिचार लगे तो वह दोष है—ऐसा समझकर उसका त्याग करना चाहिये। धर्म के स्थान तो वीतरागी अरिहन्तदेव, निर्ग्रंथ मुनिराज तथा वीतरागी शास्त्र हैं, उनमें धर्मी जीव शंका करते ही नहीं तथा उनसे कोई विपरीत हो तो उन्हें किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं करते। प्राण जायें या कितनी भी प्रतिकूलता आये तो भी वीतरागी देव-गुरु की श्रद्धा नहीं छोड़ते। इसलिये उनके सम्यक्त्व में शंकादि दोष नहीं होते।

संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव शुभाशुभकर्मवश उच्चकुल तथा नीचकुल में अनंतबार अवतार धारण कर चुका है, यह तो क्षणिक संयोग है। शाश्वत आत्मा को इस अवतार का अभिमान क्या? अवतार धारण करना, यह तो शर्म है। उच्च कुल प्राप्त करने का फल यह है कि रत्नत्रय के उत्तम आचरण द्वारा आत्मा को मोक्षमार्ग में लगाना और मिथ्यात्वादि पापों के अधम आचरण को छोड़ना। उच्चकुल में अवतार धारण करके भी यदि अभक्ष्य भक्षण आदि निंद्य कार्य करे तो नरक में ही जाता है; कहीं उच्चकुल नरक में जाने से रोक नहीं सकता; ऐसा विचारकर धर्मी जीव कुल तथा जातिमद को छोड़ते हैं।

✻ एक वैरागी बालक अपनी माता से दीक्षा ले लेने की आज्ञा माँगता है।

✻ तब उसकी माता कहती है कि—बेटा! मैं तुझे दीक्षा की आज्ञा तो देती हूँ—परंतु एक शर्त है!

✻ पुत्र कहता है—माताजी! कहिये, आपकी क्या शर्त है?

✻ माता कहती है कि—दीक्षा लेने के बाद आत्मसाधना ऐसी करना कि तुझे अब दूसरी माता न करनी पड़े, अर्थात् मैं तेरी अन्तिम माता बनूँ!—इस शर्त के साथ मैं तुझे दीक्षा लेने की अनुमति देती हूँ।

✻ पुत्र कहता है—माताजी, मैं अप्रतिहत साधना करके अवश्य केवलज्ञान प्राप्त करूँगा और पुनः इस संसार में जन्म धारण नहीं करूँगा; दूसरी माता मैं नहीं बनाऊँगा।

देखो, संसार में माता के उदर से जन्म लेना भी एक कलंक है, उसका मद क्या? चैतन्यमूर्ति अशरीरी भगवान की पहिचान माता-पिता के संबंध से कराना पड़े, वह तो शरम है। जिन्होंने अशरीरी चैतन्यतत्त्व अनुभव में लिया, उसे माता-पिता संबंधी बड़प्पन का मद नहीं होता। इसप्रकार धर्मी को जातिमद या कुलमद का अभाव है।

(3) रूप मदः—शरीर के रूप का गर्व सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं होता। आत्मा का रूप तो ज्ञान है। धर्मी जीव शरीर से भिन्न अपने को ज्ञानरूप से देखता है। इस शरीर का रूप मेरा नहीं, यह तो एक क्षण में नाश को प्राप्त होता है तथा सड़ जाता है—इसका गर्व कौन करे? इस तरह धर्मी को सुंदरता का गर्व नहीं होता; तथा किसी गुणवान का शरीर कुरूप-काला, कुबड़ा हो तो उसके प्रति तिरस्कार भी नहीं है। सुंदर मनुष्य भी यदि पापकार्य करे तो दुर्गति में जाता है, इसलिये शरीर की सुंदरता से कहीं आत्मा की शोभा नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वही आत्मा का सच्चा महान श्रेष्ठ आभूषण है, उससे आत्मा तीन लोक में शोभायमान होता है।

अपने आत्मा को शरीर से भिन्न जाना है, इसलिये शरीर रूपवान हो तो उसके द्वारा अपनी महत्ता प्रतीत नहीं होती, और शरीर कुरूप हो तो दीनता भी नहीं होती। क्योंकि वह जानता है कि यह रूप तो जड़ का है, वह रूप मेरा नहीं है, फिर उसका अभिमान क्या? मेरा चैतन्यरूप है; चैतन्य के रूप से उच्च जगत में कोई नहीं है। वीतरागी चैतन्यरूप द्वारा ही मेरी शोभा है। शुभराग भी मेरे रूप से कुरूप है, और शरीर का रूप तो पुद्गल की रचना है। ऐसी प्रतीति होने से धर्मी को रूप का मद नहीं होता।

(4) विद्यामद अर्थात् ज्ञानमदः—कोई विद्या आती हो या शास्त्रज्ञान हो, तो उसका घमंड धर्मी को नहीं होता। अहा, कहाँ परम अतीन्द्रिय केवलज्ञान और कहाँ यह अल्पज्ञान! केवलज्ञान के अचिंत्य सामर्थ्य के निकट तो यह ज्ञान अनंतवें भाग का है। चैतन्यविद्या का

समुद्र जिसने देखा, उसे गड्ढे जितने ज्ञातृत्व की महिमा का मद नहीं होता, यह तो जो ज्ञानी हैं और जिन्हें विशेष ज्ञानविद्या प्रगट हुई है, तथापि उसका मद नहीं–उनकी बात है। जो अज्ञानी हैं और विशेष ज्ञानादि न होने पर भी शास्त्रादि के अल्प ज्ञान में जो अधिक मद करते हैं, उन्हें तो आत्मा के अपार ज्ञानसामर्थ्य की खबर ही नहीं है, वे तो अल्प ज्ञातृत्व में ही अटक जाते हैं। भाई! तेरे ऐसे इन्द्रियज्ञान का मोक्षमार्ग में कोई महत्व नहीं है। यह इन्द्रियज्ञान तो क्षणिक विनाशी है। आत्मा की केवलज्ञान विद्या के पास 14 पूर्व का ज्ञान भी अनंतवें भाग का है, तो तेरे बाह्य अभ्यास की क्या गिनती? 14 पूर्व में तो अगाध ज्ञान है, वह तो भावलिंगी मुनि को ही होता है। धर्मी को शास्त्राभ्यास आदि हो, तथापि उसकी मुख्यता नहीं, उसको तो ज्ञानचेतना द्वारा अंतर में अपने आत्मा के अनुभवन की ही मुख्यता है। चैतन्यस्वभाव को ज्ञानस्वभाव में एकाग्र किये बिना सारी पढ़ाई व्यर्थ है। धर्मी को कदाचित् अन्य जानकारी कम हो, परंतु अंतर में ज्ञानचेतना द्वारा संपूर्ण भगवान आत्मा को जान लिया है—उसमें सब कुछ आ गया।

थोड़ी सी जानकारी हो, वहाँ तो हमें सबकुछ आता है और दूसरों को नहीं आता—ऐसी अभिमानबुद्धि से अज्ञानी दूसरे धर्मात्मा का अनादर कर देते हैं। केवलज्ञान विद्या का स्वामी आत्मा कैसा है, उसकी उसे खबर नहीं; इसलिये वह इन्द्रियज्ञान में मग्न हो रहा है। केवलज्ञानस्वभाव को जाने तो इन्द्रियज्ञान का अभिमान न हो। इन्द्रियज्ञान तो पराधीन ज्ञान है, उसका उत्साह क्या?

वीतरागी श्रुत का ज्ञान तो वीतरागता का कारण है, वह मानादि कषाय का कारण क्यों हो? इसलिये जैनधर्म के ऐसे दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा को मानादि कषायभावों से छुड़ाना और ज्ञान के परम विनयपूर्वक संसार के अभाव का उद्यम करना—इसप्रकार जो अपने ज्ञान को मोक्षमार्ग में लगाते हैं, उन धर्मी को ज्ञानमद या विद्यामद नहीं होता।

अरे, मेरा चैतन्यभगवान मैंने अपने में देखा है, उसकी पूर्ण परमात्मदशा के निकट अन्य किसका अभिमान करूँ? कहाँ सर्वज्ञदशा, कहाँ मुनियों की वीतरागी चारित्रदशा और कहाँ मेरी अल्पदशा? स्वभाव से पूर्ण परमात्मा होने पर भी, जब तक केवलज्ञान को प्राप्त न करूँ, तब तक मैं छोटा ही हूँ—इसप्रकार दृष्टि में प्रभुता और पर्याय में पामरता—दोनों का धर्मी को विवेक है। [—शेष अगले अंक में]

सुखदायक सामायिक

परम आनंदमय, स्वानुभूतिगम्य विशाल गंभीर आत्मतत्त्व

[श्री नियमसार कलश : 219-कार्तिक कृष्णा 7 के प्रवचन से]

अरे, इस संसार में अनादि से दु:खी जीव को शांति के लिये एक अपना परम आनंदमय तत्त्व ही आश्रयरूप है; ऐसे तत्त्व के ध्यान में जिसकी ज्ञानपरिणति परिणमित हुई है, वह जीव अंतर में किसी विशाल गंभीर तत्त्व को प्राप्त होता है कि जो अत्यंत शांत है, जिसमें दु:ख या अशांति का नाम भी नहीं है।—ऐसे जीव को सामायिक कही जाती है।

अहा, मेरा आनंदमय निर्दोषतत्त्व, वह मुझमें प्राप्त ही है—इसप्रकार धर्मी अपनी बुद्धि को अंतर में लगाता है; इसलिये मेरे ऐसे तत्त्व की प्राप्ति के लिये अन्य किन्हीं रागादिभावों का आलंबन नहीं है; वे रागादिभाव तो मेरे आनंदमय तत्त्व से दूर-दूर हैं। ऐसे तत्त्व को ध्याने पर अंतर में से परम आनंद आता है और वही दु:ख से मुक्त होने का उपाय है।

मेरी परिणति तो ज्ञान और आनंदरूप हो—ऐसा ही मैं हूँ; बाकी रागादि की किन्हीं वृत्तियों में मेरा आत्मा परिणमित नहीं होता। विकल्प के वेदन में आत्मा नहीं आता; सम्यग्दर्शन और आनंद उसी को होता है कि जो अपनी बुद्धि को, अपने ज्ञानपरिणाम को विकल्प से पार करके अंतर में परमतत्त्व में परिणमित करता है। आनंदमय आत्मा विकल्पगोचर नहीं है, वह तो शुद्धात्माश्रित ऐसे परिणाम को ही गोचर है।

परम आनंदमय आत्मतत्त्व ऐसा कोई विशाल है कि जो गंभीरतत्त्व अपनी स्वानुभूतिरूप शुद्धपरिणति को ही गम्य है, अन्य किसी प्रकार वह गम्य नहीं होता। अहा, सम्यग्दृष्टि की अंतरपरिणति में अनंत सागर जितने आनंद से दोलायमान पूर्ण विशाल तत्त्व अनुभव में आ गया है। ऐसे महान तत्त्व में या उसकी अनुभूति में दु:ख का तो कोई नामनिशान नहीं है। दु:ख से दूर और परम आनंद के रस से भरपूर विशाल गंभीर तत्त्व धर्मात्मा ने देख लिया है कि अहो! यह परमतत्त्व मैं ही हूँ; यह तत्त्व स्वानुभूति के बिना जगत के जीवों को मन

से या वचन से दूर है। परम शांतरस में डूबा हुआ यह तत्त्व विकल्प की अशांति में कैसे आयेगा? चैतन्य का मार्ग विकल्प से दूर है; चैतन्य की गति विकल्प से न्यारी है। भाई, ऐसे तेरे तत्त्व की कोई अचिंत्य परम महिमा है... उसे लक्ष में ले तो उसके आश्रय से एकाग्रता द्वारा निर्विकल्प आनंदमय परम वीतरागी सामभावरूप सामायिक प्रगट हो। वही सामायिक सुखदायक एवं मुक्तिदायक है।

यथार्थ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता

जीव अंतर के सच्चे अभ्यास द्वारा प्रयत्न करे तो उत्कृष्ट छह महीने में अवश्य आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन हो जाये—यह सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं परंतु सम्यग्दर्शन नहीं होता!

उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि अरे भाई! ऐसा नहीं हो सकता कि सम्यक्त्व के हेतु यथार्थ पुरुषार्थ करे और सम्यक्त्व न हो। कारण के अनुसार कार्य होता ही है—ऐसी कारण-कार्य की संधि है। कार्य प्रगट नहीं होता तो ऐसा मान कि तेरे कारण में ही कहीं भूल है। तेरा पुरुषार्थ कहीं राग की रुचि में रुका है। यदि स्वभाव की ओर के पुरुषार्थ की धारा प्रारंभ हो तो अंतर्मुहूर्त में अवश्य निर्विकल्प अनुभवसहित सम्यग्दर्शन हो।

स्वभाव का प्रयत्न न करके राग का प्रयत्न करे और कहे कि हम बहुत प्रयत्न करते हैं, तथापि सम्यक्त्व नहीं होता, तो उसे कारण-कार्य के मेल की खबर नहीं है। कारण दे राग का और कार्य माँगे वीतराग स्वभाव का तो कहाँ से मिलेगा? प्रयत्न करे पराश्रय का और कार्य चाहे स्वाश्रित स्वभाव का, यह कैसे बने! भाई! यदि तू सम्यक्त्व के योग्य कारण दे तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य अवश्य प्रगट होगा। इसके बिना अन्य लाखों कारणों का चाहे जितने काल तक सेवन करता रहे, तथापि उनसे सम्यक्त्वरूपी कार्य प्रगट नहीं हो सकता। इसलिये सम्यक्त्व के सच्चे पुरुषार्थ को समझ और यथार्थ कारण-कार्य का मेल समझकर पुरुषार्थ कर तो तेरा कार्य प्रगट हो। यथार्थ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिये,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिये।

(4) अमूढ़दृष्टि-अंग में प्रसिद्ध रेवतीरानी की कथा

[पहली नि:शंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की, दूसरी नि:कांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा और तीसरी निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा आपने पढ़ी; अब चौथी कथा आप यहाँ पढ़ेंगे:—]

इस भरतक्षेत्र के बीच में विजयार्द्ध-पर्वत स्थित है, उस पर विद्याधर मनुष्य रहते हैं, उन विद्याधरों के राजा चंद्रप्रभु का मन संसार से विरक्त था, वे राज्यभार अपने पुत्र को सौंपकर तीर्थयात्रा करने के लिये निकल पड़े। वे कुछ समय दक्षिण मथुरा में रहे, वहाँ के प्रसिद्ध तीर्थों और रत्नों के जिनबिम्बों से शोभायमान जिनालय देखकर उन्हें आनंद हुआ। उस समय मथुरा में गुप्ताचार्य नाम के महा मुनिराज विराजमान थे, वे विशिष्ट ज्ञान के धारी थे तथा मोक्षमार्ग का उत्तम उपदेश देते थे। चंद्रराजा ने कुछ दिनों तक मुनिराज का उपदेश श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक उनकी सेवा की।

कुछ समय बाद उन्होंने उत्तर मथुरानगरी की यात्रा को जाने का विचार किया—कि जहाँ से जम्बूस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए हैं तथा जहाँ अनेक मुनिराज विराजमान थे; उनमें भव्यसेन नाम के मुनि भी प्रसिद्ध थे। उस समय मथुरा में वरुण राजा राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम रेवतीदेवी था।

चंद्रराजा ने मथुरा जाने की अपनी इच्छा गुप्ताचार्य के समक्ष प्रगट की और आज्ञा माँगी तथा वहाँ के संघ को कोई संदेश ले जाने के लिये पूछा—

तब श्री आचार्यदेव ने सम्यक्त्व की दृढ़ता का उपदेश देते हुए कहा कि—आत्मा का सच्चा स्वरूप समझनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव वीतराग अरिहंतदेव के अतिरिक्त अन्य किसी को देव नहीं मानते। जो देव न हो, उसे देव मानना, वह देवमूढ़ता है। ऐसी मूढ़ता धर्मी को नहीं होती। मिथ्यामत के देवादिक बाह्य में चाहे जितने सुंदर दिखते हों, ब्रह्मा-विष्णु या शंकर के समान हों—तथापि धर्मीजीव उनके प्रति आकर्षित नहीं होते। मथुरा की राजरानी रेवतीदेवी ऐसे सम्यक्त्व को धारण करनेवाली हैं तथा जैनधर्म की श्रद्धा वे बहुत दृढ़ हैं, उन्हें धर्मबुद्धि का आशीर्वाद कहना तथा वहाँ विराजमान सुरत मुनि—कि जिनका चित्त रत्नत्रय में मग्न है—उन्हें वात्सल्यपूर्वक नमस्कार कहना।

— इसप्रकार आचार्यदेव ने सुरतमुनिराज को तथा रेवतीरानी को संदेश भेजा परंतु भव्यसेन मुनि को तो याद भी न किया; इससे राजा को आश्चर्य हुआ, और पुनः आचार्य महाराज से पूछा कि अन्य किसी से कुछ कहना है ? परंतु आचार्य ने इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा।

इससे चंद्रराजा को ऐसा लगा कि क्या आचार्यदेव भव्यसेन मुनि को भूल गये होंगे ?— नहीं, नहीं, वे भूल तो नहीं हैं, क्योंकि वे विशिष्ट ज्ञान के धारक हैं, इसलिये उनकी इस आज्ञा में अवश्य ही कोई रहस्य होगा। ठीक, जो होगा वह वहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देगा—इसप्रकार समाधान करके, आचार्यदेव के चरणों में नमस्कार करके वे मथुरा की ओर चल दिये।

मथुरा में आकर सर्वप्रथम उन्होंने सुरतमुनिराज के दर्शन किये, वे अत्यंत उपशांत और शुद्धरत्नत्रय के पालन करनेवाले थे, चंद्रराजा ने उनसे गुप्ताचार्य का संदेश कहा तथा उनकी ओर से नमस्कार किया।

चंद्रराजा की बात सुनकर सुरतमुनिराज ने प्रसन्नता व्यक्त की और स्वयं भी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर श्री गुप्तआचार्य को परोक्ष नमस्कार किया। एक-दूसरे के प्रति मुनियों का ऐसा वात्सल्य देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ। सुरतमुनिराज ने कहा : हे वत्स ! वात्सल्य द्वारा धर्म शोभायमान होता है। धन्य है उन रत्नत्रय के धारक आचार्यदेव को—कि जिन्होंने इतनी दूर से भी साधर्मी के रूप हमें याद किया। शास्त्र में सच कहा है कि—

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः।
साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले॥

अहा! धर्म के प्रेम द्वारा जो भव्य जीव साधर्मीजनों के प्रत्येक उत्तम वात्सल्य करते हैं, उनका जन्म जगत में सफल है।

प्रसन्नचित्त से भावपूर्वक बारंबार उन मुनिराज को नमस्कार करके राजा विदा हुए तथा भव्यसेन मुनिराज के पास गये... उन्हें बहुत शास्त्रज्ञान था और लोगों में वे बहुत प्रसिद्ध थे। राजा काफी समय तक उनके साथ रहे परंतु उन मुनिराज ने न तो आचार्यसंघ का कोई कुशल-समाचार पूछा और न कोई उत्तम धर्माचर्चा की। मुनि के योग्य व्यवहार-आचार भी उनके ठीक न थे। शास्त्रज्ञान होने पर भी शास्त्रों के अनुसार उनका आचरण न था। मुनि को न करनेयोग्य प्रवृत्ति वे करते थे। यह सब प्रत्यक्ष देखने से राजा को मालूम हो गया कि भव्यसेन मुनि कितने भी प्रसिद्ध क्यों न हों, तथापि वे सच्चे मुनि नहीं।—तो फिर गुप्ताचार्य उनको क्यों याद करते। वास्तव में, उन विचक्षण आचार्यभगवान ने योग्य ही किया।

इसप्रकार सुरतिमुनिराज तथा भव्यसेनमुनि को तो प्रत्यक्ष देखकर परीक्षा की। अब रेवती रानी को आचार्यमहाराज ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद भेजा है, इसलिये उनकी भी परीक्षा करूँ—ऐसा राजा को विचार आया।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन मथुरा नगरी के उद्यान में अचानक साक्षात् ब्रह्माजी पधारे हैं, नगरजनों की भीड़ उनके दर्शन को उमड़ पड़ी.... तथा समस्त नगर में चर्चा होने लगी कि अहा, सृष्टि का सर्जन करनेवाले ब्रह्माजी साक्षात् पधारे हैं... वे कहते हैं कि—मैं इस सृष्टि का सर्जक हूँ और दर्शन देने आया हूँ।

मूढ़ लोगों का तो क्या ही कहना? अधिकांश लोग तो ब्रह्माजी के दर्शन कर आये। प्रसिद्ध भव्यसेन मुनि भी कौतुहलवश वहाँ हो आये, सिर्फ न गये सुरति-मुनि और न गई रेवतीरानी।

जब राजा ने साक्षात् ब्रह्मा की बात की, तब महारानी रेवती ने निःशंकरूप से कहा : महाराज! यह ब्रह्मा हो नहीं सकते, किसी मायाचारी ने यह इन्द्रजाल रचा है, क्योंकि कोई ब्रह्मा इस सृष्टि के सर्जक हैं ही नहीं। ब्रह्मा तो अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा है अथवा भरतक्षेत्र में भगवान ऋषभदेव ने मोक्षमार्ग की रचना की है, इसलिये उन्हें ब्रह्मा कहा जाता है—इसके अतिरिक्त कोई ब्रह्मा नहीं है, जिसको मैं वंदन करूँ।

दूसरा दिन हुआ और मथुरा नगरी में दूसरे दरवाजे पर नागशय्यासहित साक्षात् विष्णु भगवान पधारे, जिन्हें अनेक शृंगार और चार हाथों में शस्त्र थे। लोगों में तो फिर हलचल मच गई, बिना विचारे लोग दौड़ने लगे और कहने लगे कि अहा! मथुरानगरी का महाभाग्योदय हुआ है कि कल साक्षात् ब्रह्माजी ने दर्शन दिये और आज विष्णुभगवान पधारे हैं।

राजा को ऐसा लगा कि आज जरूर रानी चलेगी, इसलिये उन्होंने उमंगपूर्वक रानी से वह बात की—परंतु रेवती जिसका नाम, वीतरागदेव के चरण में लगा हुआ उसका चित्त जरा भी चलायमान नहीं हुआ। श्री कृष्ण आदि नौ विष्णु (अर्थात् वासुदेव) होते हैं, और वे नौ तो चौथे काल में हो चुके हैं। दसवें विष्णुनारायण कभी हो नहीं सकते, इसलिये जरूर यह सब बनावटी है, क्योंकि जिनवाणी कभी मिथ्या होती नहीं। इस तरह जिनवाणी में दृढ़ श्रद्धापूर्वक, अमूढ़दृष्टि अंग से वह किंचित् विचलित नहीं हुई।

तीसरे दिन फिर एक नई बात उड़ी कि ब्रह्मा और विष्णु के पश्चात् आज तो पार्वतीदेवी सहित जटाधारी शंकर महादेव पधारे हैं। गाँव के लोग उनके दर्शन को उमड़ पड़े। कोई भक्तिवश गये, तो कोई कौतूहलवश गये, परंतु जिनके रोम-रोम में वीतराग देव का निवास था ऐसी रेवतीरानी का तो रोम भी नहीं हिला, उन्हें कोई आश्चर्य न हुआ, उन्हें तो लोगों पर दया आई कि अरेरे! परम वीतराग सर्वज्ञदेव मोक्षमार्ग को दिखानेवाले भगवान, उन्हें भूलकर मूढ़ता से लोग इस इन्द्रजाल में कैसे फँस रहे हैं! वास्तव में भगवान अरिहंतदेव का मार्ग प्राप्त होना जीवों को बहुत ही दुर्लभ है।

अब चौथे दिन मथुरा नगरी में तीर्थंकर भगवान पधारे... अद्भुत समवसरण की रचना, गंधकुटी जैसा दृश्य और उसमें चतुर्मुखसहित तीर्थंकर भगवान! लोग तो फिर से दर्शन करने के लिये दौड़ पड़े। राजा को लगा कि अबकी बार तो तीर्थंकर भगवान पधारे हैं, इसलिये रेवतीदेवी जरूर साथ आयेगी।

परंतु रेवतीरानी ने कहा कि अरे महाराज! इससमय इस पंचमकाल में तीर्थंकर कैसे? भगवान ने इस भरतक्षेत्र में एक चौबीसी में चौबीस ही तीर्थंकर होना कहा है और ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी तक 24 तीर्थंकर होकर मोक्ष को पधार चुके हैं। यह पच्चीसवें तीर्थंकर कहाँ से आये? यह तो किसी मायावी का मायाजाल है। मूढ़ लोग देव के स्वरूप का विचार भी नहीं करते और यों ही दौड़े चले जाते हैं।

बस, परीक्षा हो चुकी... विद्याधर राजा को विश्वास हो गया कि इन रेवतीरानी की जो प्रशंसा गुप्ताचार्य ने की है, वह योग्य ही है, यह सम्यक्त्व के सर्व अंगों से शोभायमान हैं। क्या पवन से भी मेरुपर्वत हिलता होगा? नहीं; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन में मेरु समान निष्कंप सम्यग्दृष्टि जीव कुधर्मरूपी पवन द्वारा किंचित् मात्र चलायमान नहीं होते, उन्हें देव-गुरु-धर्म संबंधी मूढ़ता नहीं होती, वे यथार्थ पहिचान करके सच्चे वीतरागी देव-गुरु-धर्म को ही नमन करते हैं।

रेवतीरानी की ऐसी दृढ़ धर्मश्रद्धा देखकर विद्याधर को अत्यंत प्रसन्नता हुई, वास्तविक स्वरूप में प्रगट होकर उसने कहा—हे माता! मुझे क्षमा करो। मैंने ही चार दिन तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का इन्द्रजाल रचा था, गुप्ताचार्यदेव ने आपके सम्यक्त्व की प्रशंसा की, इससे आपकी परीक्षा करने के लिये ही मैंने यह सब किया था। अहा! धन्य है आपकी श्रद्धा को! धन्य है आपकी अमूढ़दृष्टि को! हे माता! आपके सम्यक्त्व की प्रशंसापूर्वक श्रीगुप्ताचार्य भगवान ने आपको धर्मवृद्धि का आशीर्वाद भेजा है।

मुनिराज के आशीर्वाद की बात सुनते ही रेवतीरानी को अपार हर्ष हुआ... हर्ष-विभोर होकर उन्होंने उस आशीर्वाद को स्वीकार किया और जिस दिशा में मुनिराज विराजते थे, उस ओर सात डग चलकर परमभक्तिपूर्वक मस्तक नमाकर मुनिराज को परोक्ष नमस्कार किया।

विद्याधर राजा ने रेवतीमाता का बड़ा सन्मान किया और उनकी प्रशंसा करके सारी मथुरा नगरी में उनकी महिमा फैला दी। राजमाता की ऐसी दृढ़ श्रद्धा देखकर और जिनमार्ग की ऐसी महिमा देखकर मथुरानगरी के कितने ही जीव कुमार्ग को छोड़कर जैनधर्म के भक्त बने और अनके जीवों की श्रद्धा दृढ़ हुई। इसप्रकार जैनधर्म की महान प्रभावना हुई।

[बन्धुओं, यह कथा हमसे ऐसा कहती है कि वीतराग परमात्मा अरिहन्तदेव का सच्चा स्वरूप पहिचानो और उनके अतिरिक्त अन्य किसी भी देव को—साक्षात् ब्रह्मा-विष्णु-शंकर समान दिखते हों, तथापि उन्हें नमन न करो, जिनवचन से विरुद्ध किसी बात को न मानो। भले ही सारा जगत अन्यथा माने और तुम अकेले रह जाओ, तथापि जिनमार्ग की श्रद्धा नहीं छोड़ना।]

मोक्ष का भजन

भवछेदक भक्ति का अद्भुत वर्णन

शुभरागरूप भक्ति, वह कोई भवछेदक भक्ति नहीं है; सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप वीतरागभक्ति ही सचमुच भवछेदक भक्ति है। ऐसी भक्ति द्वारा अंतर में भगवान की साक्षात् भेंट होती है। जिसमें भगवान की भेंट न हो और भवदु:ख मिले उसे भक्ति कौन कहेगा? सम्यक्त्वादि के भजन में तो अपने परमात्मतत्त्व की अनुभूति है, अनंत शांति का वेदन है, चैतन्यभगवान साक्षात्कार है।

* श्रमण और श्रावक शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधनारूप जो भक्ति करते हैं, वह मोक्ष की भक्ति है, वह मोक्ष का मार्ग है।

* निज परमात्मतत्त्व का भजन अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान-आचरण, वह सच्ची भक्ति है।

* चैतन्य की आराधना, चैतन्य का भजन तो चैतन्यभाव द्वारा होता है, राग द्वारा नहीं होता।

* अरे जीव! अपने आनंदमय निजगृह को छोड़कर दु:खमय वनवास में कहाँ जा रहा है?

* सम्यग्दर्शन, वह धर्मभक्ति है; सम्यग्ज्ञान भी धर्मभक्ति है और सम्यक्चारित्र भी धर्मभक्ति है, उन तीनों में शुद्ध रत्नत्रयपरिणामों का सेवन है, उनमें कहीं राग नहीं है। शुद्ध रत्नत्रयपरिणामों का ऐसा भजन अर्थात् आराधना, वह मोक्ष का मार्ग है, वह मोक्ष की भक्ति है। जो ऐसी भक्ति करता है, वह जीव निरंतर भक्त है-भक्त है।

* ऐसी रत्नत्रयभक्ति कैसे होती हैं? क्या शुभराग द्वारा वह भक्ति होती है?—तो कहते हैं कि नहीं; अपना जो परम आत्मतत्त्व, उसकी गहराई में उतरकर, उसके सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप जो शुद्ध परिणाम, वही सच्ची भक्ति है; ऐसी भक्ति का फल मुक्ति है।

* अहा! अनंत अतीन्द्रिय-आनंद और अनंत अतीन्द्रियज्ञान, ऐसे अनंतभाव जिसमें भरे हुए हैं, ऐसे अपने आत्मा के सन्मुख होकर जो वीतरागी श्रद्धा आदि परिणाम प्रगट हुए, वही आराधनारूप भक्ति है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये और मोक्षमार्ग भी आ गया।

* शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन भावों में आत्मा है। आत्मा के ऐसे अद्भुत अलौकिक स्वरूप का प्रकाशन भगवान जिनेन्द्रदेव के ही मार्ग में है। प्रभु! तू स्वयं भगवान है, तू अपने आत्मा का ही भजन कर, उसे भजने से तेरी मुक्ति होगी।

* आत्मा को पर की शरण नहीं है; पर के भजन का शुभविकल्प भी आत्मा को शरणरूप नहीं है; शरणरूप तो अपने आत्मा के आश्रय से जो निर्विकल्प दशा हुई, वही है। आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति में जो शुद्ध परिणाम हुए, उनका भजन अर्थात् बारंबार उनका सेवन, वह आराधना है, वह भक्ति है, वह मुक्ति की दातार है। श्री जिनवर भगवान ने मोक्ष के लिये श्रावकों को तथा श्रमणों को ऐसी वीतरागी भक्ति का उपदेश दिया है। श्रावकों को भी शुद्ध परमात्मतत्त्व की सन्मुखता द्वारा शुद्धपरिणतिरूपी आराधना-भक्ति निरंतर वर्तती है, इसलिये वे भक्त हैं—भक्त हैं, अर्थात् वे भी मोक्ष के आराधक हैं।

* भाई, तुझे अपनी दशा बदलना हो तो अपनी रुचि की-ज्ञान की दिशा बदलना पड़ेगी; परोन्मुखता छोड़कर अपने सर्व परिणामों को स्वोन्मुख करना होंगे। अहा! मैं ही परमात्मतत्त्व अचिंत्य अनंत भावों का भंडार हूँ—इसप्रकार परम महिमा लाकर स्ववस्तु में परिणाम को लगा; उसी में शुद्ध रत्नत्रय की आराधना होगी। इसके अतिरिक्त बाह्य में देव-गुरु-शास्त्रादि की भक्ति में उपयोग लगाकर कोई उस शुभराग से मुक्ति होना माने तो भगवान कहते हैं कि वह सच्चा भक्त नहीं है, वह मुक्ति का आराधक नहीं है।

* शुभरागरूप भक्ति, वह कोई भवछेदक भक्ति नहीं है; सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप वीतरागी भक्ति ही वास्तव में भवछेदकभक्ति है। ऐसी भक्ति द्वारा अंतर में भगवान की साक्षात् भेंट होती है। जिसमें भगवान की भेंट न हो और भवदुःख मिले, उसे भक्ति कौन कहेगा? सम्यक्त्वादि के भजन में तो अंदर अपने परमात्मतत्त्व की अनुभूति है, अनंत शांति का वेदन है, चैतन्यभगवान का साक्षात्कार है।

* अहा, स्वानुभूतिरूप मार्ग। वह तो अनंत आनंद का देनेवाला है। अनंत आनंद का मार्ग तो अद्‌भुत ही होगा न! जीवों को ऐसे मार्ग का लक्ष नहीं है, इसलिये बाह्य में राग के सेवन को मार्ग मान रहे हैं। भाई, तेरा मार्ग राग में नहीं है; तेरा मार्ग तो तेरे चैतन्य में समाया हुआ है। चैतन्य में अगाध गंभीर शांति और अनंत गुणों का भंडार भरा है, उसमें देखने पर तुझे आनंद का समुद्र दिखाई देगा।

* शरीर तो करोड़ों रोगों का घर है, उसमें कही शांति नहीं है और यह चैतन्यप्रभु आत्मा अनंत आनंद का धाम है, उसमें कही रांग का या अशांति का नामनिशान नहीं है। ऐसे चैतन्य की सेवा कर! भाई! शरीर की सेवा में तो अनंतभव व्यतीत किये और दु:खी हुआ; तो अब इस भव में तो शरीरादि से भिन्न चैतन्यतत्त्व की सेवा कर... कि जिससे तेरा अनंतभव का दु:ख मिट जायेगा और आत्मा की परम शांति का तुझे वेदन होगा, तेरे आत्मा में मोक्ष की भनक आयेगी।

* जो जीव मुक्त हुए, वे किसको भजकर मुक्त हुए? कि परमात्मा को भजकर मुक्त हुए हैं। कौन परमात्मा? अंतर में शुद्धज्ञानमय कारणपरमात्मा, ऐसा जो अपना आत्मा, उस परमात्मा को सम्यक्‌रत्नत्रय परिणति द्वारा भजकर वे जीव सिद्ध हुए हैं। तू भी सिद्धि के लिये अपने परम आत्मतत्त्व को सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा अभेदरूप से भज।

* इसप्रकार रत्नत्रय द्वारा सिद्धपद को साधनेवाला मुमुक्षुजीव, अन्य सिद्ध भगवंतों के भी शुद्धगुणों को पहिचानकर उनकी परमभक्ति करता है, वह व्यवहारभक्ति है। देखो, इसमें भी शुद्धगुणों की प्रतीति सहित—ऐसी बात की है। 'कारणपरमात्मा का अभेदरत्नत्रय द्वारा आराधना करके ही वे सिद्ध हुए हैं'—ऐसा जानकर उनकी भक्ति करता है; परंतु 'इस भक्ति के शुभराग द्वारा सिद्धपद प्राप्त होगा'—ऐसा वह मुमुक्षु नहीं मानता। ऐसी पहिचानपूर्वक जितनी शुद्धरत्नत्रय वीतराग परिणति हुई, उतनी निश्चयभक्ति है, वह मुक्ति का कारण है; उसके साथ पंचपरमेष्ठी के शुद्धगुणों की प्रतीति सहित भक्ति, सो व्यवहारभक्ति है। धर्मी श्रावकों तथा श्रमणों को ऐसी दोनों प्रकार की भक्ति होती है। वे उदयभावों से ज्ञानचेतना को अत्यंत भिन्न अनुभव करते हैं; दु:ख से अत्यंत रहित ऐसे आनंद से उनका चित्त भरा है। धर्मी को सम्यक्त्वादि जो

भाव प्रगट हुए हैं, उनमें भव का अभाव है, दु:ख का अभाव है, उदयभावों का अभाव है। ऐसी आनंदमय शांत चेतना द्वारा धर्मी जीव अपने परमात्मतत्त्व को भजता-भजता मुक्ति को साधता है, इसलिये वह जीव भक्त है-भक्त है।

* परमात्मा को दु:ख नहीं है तथा परमात्मा की साधक पर्याय में भी दु:ख नहीं है। जो पर्याय परभाव से विमुख होकर परमात्मतत्त्व में प्रविष्ट हुई, उसमें दु:ख कैसा? वह तो आनंद के अनंत सागर में लीन हो गई। अंतर्मुख परमात्मतत्त्व का आनंद अंतर्मुखभाव से ही प्राप्त होता है, उसमें बहिर्मुखभाव का अभाव है। जिस परिणाम में अपने चैतन्यपरमात्मा की भेंट हुई, वह परिणाम वीतरागी जैनशासन है; वही निश्चयभक्ति है, वही मुक्तिमार्ग है। वाह, संतों ने अंतर का मार्ग सुगम कर दिया है।

* अंतर में उतरना, वह एक ही शांति का मार्ग है—ऐसा दृढ़ निर्णय किये बिना परिणामों का बाह्य में भटकना दूर नहीं होगा। मेरा आत्मा ही परमतत्त्व, उत्कृष्ट शांति का धाम है—ऐसी अपनी तत्त्व की अद्भुत अचिंत्य महिमा जानकर उसमें परिणाम लगाने से परम शांति का वेदन होता है। आत्मा का ऐसा अद्भुत स्वभाव जिसने देखा, वह जीव परभाव से मुक्त हुआ, रागादिभावों को अपनी चेतना परिणति से अत्यंत भिन्न जाना; जैसे जगत के दूसरे पदार्थ चेतना से बाहर हैं, उसीप्रकार रागादिभाव भी चेतना से बाहर हैं। ऐसी चेतनापरिणति ही परमात्मतत्त्व की भक्ति करती-करती (उसमें एकाग्र होती-होती) आनंद से मोक्ष को साधती है।

आनंदधाम में आ!

रे जीव! यह किंचित् दु:ख भी तुझसे सहन नहीं होता तो इसकी अपेक्षा महान दु:ख जिनसे भोगना पड़ते हैं—ऐसे अज्ञानमय विपरीत भावों का सेवन तू क्यों कर रहा है।

यदि तुझे दु:ख का सच्चा भय हो तो उस दु:ख के कारणरूप ऐसे मिथ्यात्वादि विपरीतभावों को तू शीघ्र छोड़ और आनंदधाम ऐसे निजस्वरूप में आ!

आनंदमय स्वानुभूति

[—जिसमें भगवान आत्मा शुद्धरूप से प्रकाशित होता है]

(श्री समयसार मंगलकलश-1, वीर सं. 2498, मार्गशीर्ष कृष्णा 6)

समयसार का तात्पर्य है शुद्धात्मा की अनुभूति। जिसने अंतर्मुख होकर ऐसी अनुभूति की, उसके अपने आत्मा के असंख्य प्रदेशों में समयसार परमागम के भाव अंकित हो गये... उसकी पर्याय में सिद्धभगवान पधारे, उसका आत्मा भगवानरूप से अपने में प्रगट हुआ; वह शुद्धात्मा में नमकर साधक हुआ।—ऐसे साधकभावसहित समयसार प्रारंभ होता है।

नमः समयसाराय.... मंगलाचरण में शुद्धात्मा को नमस्कार करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—अहा, निर्विकल्प स्वानुभूति में प्रकाशमान ऐसे सारभूत शुद्धात्मा को मैं नमन करता हूँ। स्वानुभूति में रागादि परभाव का अभाव आ गया, क्योंकि वे रागादि भाव आत्मा की अनुभूति से बाहर हैं। अपनी स्वानुभूति में आया, उतना ही शुद्धसत्तारूप वस्तु मैं हूँ, उसी में मैं नमता हूँ। बाह्यभाव अनंतकाल किये, अब मेरा परिणमन अंतर्मुख हुआ है, इसलिये अपूर्व साधकभाव प्रारंभ हुआ है; और ऐसे भाव द्वारा शुद्ध आत्मा में ही नमता हूँ। उसे नमन किया है अर्थात् उसकी स्वानुभूति की है और अभी विशेष उसी में नमता हूँ; इसलिये प्रतिक्षण मेरा साधकभाव बढ़ता जाता है। ऐसे अपूर्व भाव सहित इस समयसार का मंगल प्रारंभ होता है।

यह सत्रहवीं बार के प्रवचन प्रारंभ करते हुए पूज्य स्वामीजी परम उल्लासपूर्वक कहते हैं कि—अहा, सिद्ध भगवंत तो भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित ऐसे शुद्ध आत्मा हैं, इसलिये वे 'समयसार' हैं, और यह मेरा आत्मा भी परमार्थतः भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित शुद्ध है; स्वानुभूति द्वारा ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्ष में लेकर उसी को मैं नमता हूँ। मेरा शुद्ध आत्मद्रव्य मेरी स्वानुभूतिरूप पर्याय ही प्रकाशमान है; स्वानुभूति से भिन्न अन्य कोई साधन नहीं है।

स्वानुभूति से प्रगट हुआ आत्मा कैसा है ?—तो कहते हैं चित्स्वभाव है। मैं स्वयं चैतन्यस्वभाव हूँ, चैतन्यसत्तारूप वस्तु मैं ही हूँ। शुद्ध आत्मा वह द्रव्य, चित्स्वभाव उसका गुण, स्वानुभूति वह पर्याय;—इसप्रकार शुद्ध समयसार में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का समावेश हो गया। ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्षगत करके उसे मैं नमता हूँ, स्वसन्मुख होकर आनंदसहित होकर आत्मानुभूति करता हूँ। ऐसी स्वानुभूति, वह मोक्षमार्ग है; उसमें संवर-निर्जरा आये और आस्रव-बंध का अभाव हुआ। शुद्ध आत्मा की ऐसी स्वानुभूति तो अनंत गुण के निर्मलभावों से भरी हुई महा गंभीर है; उसमें आनंद की मुख्यता है। स्वानुभूति में स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है। ऐसी अपूर्व स्वानुभूति ही इस समयसार परमागम का तात्पर्य है। जिसने ऐसी अनुभूति की, उस आत्मा के असंख्य प्रदेश में समयसार परमागम के भाव अंकित हो गये; वह आत्मा स्वयं भावश्रुतरूप परिणमित हुआ; उसकी पर्याय ने अंतर्मुख होकर अपने को पूर्ण भगवानरूप से प्रसिद्ध किया।

देखो, यह अमृतचंद्राचार्यदेव का मंगलाचरण! उन्होंने तो इस पंचमकाल में कुन्दकुन्दप्रभु के गणधर जैसा कार्य किया है।

आत्मा अपने ही ज्ञान द्वारा, स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से स्वयं अपने को जानता है; स्वयं अपने को जानने में कोई अन्य—राग या इन्द्रियाँ सहायक नहीं हैं। मात्र परोक्षज्ञान द्वारा, इन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता; स्वानुभूति में ही आत्मा स्वयं अपने को परम-आनंद -सहित प्रत्यक्ष होता है। ऐसी अनुभूति की गंभीर महिमा की क्या बात! इस अनुभूति में राग का समावेश नहीं होता; उसमें पूर्ण शुद्ध आत्मा प्रकाशित होती है, परंतु विकल्प का तो उसमें नाम-निशान भी नहीं है। जिन किन्हीं जीवों ने आत्मा की साधना की है, उन्होंने ऐसी स्वानुभूति की क्रिया द्वारा ही साधना की है; इसलिये तुम भी ऐसी स्वानुभूति के लक्ष से ही समयसार का श्रवण करना। सुनते समय राग पर लक्ष मत देना, विकल्प पर जोर मत देना, परंतु जो शुद्ध आत्मा कहा जा रहा है, उसे लक्ष में लेकर उस पर जोर देने से तुम्हें भी अपूर्व आनंद सहित स्वानुभूति होगी। ऐसी स्वानुभूति हुई, वह अपूर्व मंगल है।

आत्मा ही ऐसी सारभूत वस्तु है कि स्वयं अपने को जानने से महान सुख होता है। आत्मा से भिन्न ऐसी कोई सारभूत वस्तु नहीं है कि जिसे जानने से जीव को सुख हो। ज्ञाता

स्वभावी आत्मा स्वयं सुखरूप है; इसलिये स्वयं अपने को जानते ही परम सुख होता है।

ऐसा सारभूत शुद्ध आत्मा मुझे अपनी स्वानुभूति द्वारा ही ज्ञात होता है। ऐसे आनंदमय आत्मा के सिवा अन्य सब मेरी स्वानुभूति से बाहर है। जितना स्वानुभूति में समाया है, उतना ही मेरा शुद्ध आत्मा है, वही समयसार है, उसी को मैं नमन करता हूँ। रागादि परभावों से मेरी स्वानुभूति बाहर है, उन बाह्यभावों द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता, अनुभव में नहीं आता।

स्वानुभूतिगम्य ऐसा आत्मा ही जगत में सबका भूप है; जगत के सर्व पदार्थों का राजा, सबसे श्रेष्ठ महान सुंदर यह चिदानंद आत्मा स्वयं ही है। हे जीवो! ऐसे अपने आत्मा को तुम स्वानुभूति द्वारा जानो; उसे जानने से महान आनंद का वेदन होगा।

भाई, जगत के बाह्य पदार्थों को तो अनादिकाल से इन्द्रियज्ञान द्वारा तूने जाना, परंतु तुझे किंचित् सुख नहीं मिला, इसलिये पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान तो निःसार है; सारभूत ऐसे अपने आत्मा को अतीन्द्रिय अनुभूति द्वारा जानते ही तुझे किसी अपूर्व अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होगा।

अरे, यह चैतन्यतत्त्व परम गंभीर महिमावंत है, इसके समक्ष जगत के बाह्य ज्ञातृत्व का क्या मूल्य? भाई! उसकी महिमा छोड़ और अपने उपयोग को आत्मा में लगाकर उसकी परम महिमा कर।—वही मोक्षमार्ग का प्रारंभ है।

हे जीव! तूने सब जाना, परंतु मात्र एक आत्मा को नहीं जाना, इसलिये तुझे किंचित् सुख नहीं हुआ। जाननेवाला तू स्वयं है, सुख तुझमें स्वय में है; उसे जाने बिना सुख कहाँ से होगा? और स्वतत्त्व को नहीं जाना, इसलिये पर को जानते हुए उसमें अपनत्व माना, उसमें सुख माना, इससे संसार-भ्रमण करके दुःखी हुआ। जगत से भिन्न और जगत का शिरोमणि, जगत में सर्वश्रेष्ठ, ऐसे निजात्मा को जानते ही अनंतगुण का सम्यक्भाव विकसित होकर अनंत शांति का अनुभव होता है।—ऐसे अपूर्व मंगलभावसहित यह समयसार प्रारंभ होता है—साधकभाव की शुरुआत होती है।

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

[गतांक से आगे]

गगन कै बीचि जैसें घनघटामांहि रचि, आप छिप रह्यौ तोऊ तेज नहिं गयो है।
करम संजोग जैसैं आवर्‌यो है उपयोग, गुपत सुभाव जाकौ तेज नहिं गयो है॥
ज्ञेयकौं लखत ऐसो ज्ञानभाव यामैं कोऊ, परम प्रतीति धारि ज्ञान लखि लयो है।
उपयोगधारी जामैं उपयोग कीएं सिद्धि, और प्रकार नहीं जिनबैन चयो है॥24॥

महादुख दानी भवतिथि के निदानी जातैं, होय ज्ञान हानि ऐसैं भावक चमैया हैं।
अति ही विकारी पापपुंज अधिकारी सदा, ऐसे रागदोष भाव तिनके दमैया हैं॥
दया दान पूजा सील संजमादि सुभभाव, ए हू पर जानैं नाहिं इनमैं उम्हैया हैं।
सुभासुभ रीति त्यागि जागे हैं सरूपमांहि, तेई ज्ञानवान चिदानंद के रमैया हैं॥25॥

देह परिमाण गति गतिमाहिं भयौ जीव, गुपत रह्यो तौऊ धारें गुणवृन्द है।
करम कलंक तोऊ जामैं न करम कोऊ, राग दोष धारे हू विसुद्ध निरफंद है॥
धारत सरीर तोऊ आतमा अमूरतीक, सुध पक्ष गहे एक सदा सुखकंद है।
निहचै विचार देख्यौ सिद्ध सो सरूप दीप, मेरे तौ अनादिकौ सरूप चिदानंद है॥26॥

व्यवहारपक्ष परजाय धरि आयौ तौऊ, सुद्धनै विचारे निज परमैं न फँसा है।
ज्ञान उपयोग जाकी सकति मिटाई नाहिं, कहा भयौ जो तू भववासी होय वसा है॥
द्वैत को विचार कीएं भासत संयोग पर, देखैं पद एक पर ओर नहिं धसा है।
निहचै विचारकैं सरूप में संभारि देखी, मेरी तौ अनादिही की चिदानंद दसा है॥27॥

ज्ञान की सकति महा गुपति भई है तौऊ, ज्ञेय की लखैया जाकी महिमा अपार है।
प्रतच्छ प्रतीति मैं परोक्ष कहो कैसें होई, चिदानंद चेतन कौ चिह्न अविकार है॥
परम अखंड पद पूरन विराजमान, तिहुंलोक नाथ कीएं निहचै विचार है।
अद्वैपद यौ ही एक सासतो निधान मेरै, ज्ञान उपयोग मैं सरूप की संभार है॥28॥

बहु विसतार कहु कहाँ लौं बखानियतु, यह भववास जहाँ भाव की असुद्धता।
त्यागि गृहवास ह्वै उदास महाव्रत धारैं, यह विपरीति जिनलिंगमांहि सुद्धता।
करम की चेतना मैं शुभउपयोग सधै, ताही मैं ममत ताकै तातैं नांही सुद्धता।
वीतराग देव जाकौ यौही उपदेश महा, यह मोखपद जहाँ भाव की विशुद्धता॥29॥

ज्ञानउपयोग जोग जाकौ न वियोग हूवो, निहचैं निहारैं एक तिहुंलोक भूप है।
चेतन अनंत चिह्न सासतौ विराजमान, गति गति भम्यौ तौऊ अमल अनूप है॥
जैसें मणिमाहिं कोऊ काचखंड माने तोऊ, महिमा न जाय वामैं वाही कौ सरूप है।
ऐसे ही संभारि कै सरूप कौं विचार्यो मैंने, अनादि कौ अखंड मेरौ चिदानंदरूप है॥30॥

(दोहा)

चिदानंद आनंदमय, सकति अनंत अपार।
अपनौ पद ज्ञाता लखै, जामैं नहिं अवतार॥

(छप्पय)

सहज परम धन धरन, हरन सब करन भरममल।
अचल अमल पद रमन, वमन पर करि निज लहि थल॥
अतुल अबाधित आप, एक अविनासी कहिए।
परम महासुखसिंधु, जास गुण पार न लहिए॥
जोती सरूप राजत विमल, देव निरंजन धरम धर।
निहचै सरूप आतम लखै, सो शिवमहिला होय वर॥32॥

—०००—

आत्मार्थी का परिणमन

जो जीव आत्मार्थी हुआ, उसका परिणमन आत्मोन्मुख हुआ, इसलिये संसार और संसार की ओर के भावों से उसकी वृत्ति संकुचित होने लगी। अपने ज्ञान-आनंद से परिपूर्ण आत्मा का प्रेम करके अन्य समस्त भावों का प्रेम उसने छोड़ा है। बाह्यभाव अनंतकाल किये; अब उसका परिणमन अंतर्मुख होता है... चैतन्य-प्रेम की धारा को अंतरस्वरूप में ढलने से अब कोई रोक नहीं सकता।

समयसार का श्रवण करने से आनंद का द्वार खुल जायेगा

[श्री समयसार, कलश-3 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(मार्गशीर्ष कृष्णा 10, वीर सं. 2498)

आचार्यदेव कहते हैं कि—इस समयसार की टीका द्वारा अनुभूति अत्यंत शुद्ध होओ! ...इसलिये हे भव्य श्रोता! इस समयसार के श्रवण से तेरी परिणति भी शुद्ध होगी- ऐसा वचन है; लेकिन किसप्रकार श्रवण करना? वह यहाँ बतलाते हैं:—हम जो शुद्धात्मा बतलाना चाहते हैं, उस पर लक्ष का जोर देना, श्रवण के विकल्प पर जोर मत देना। इसप्रकार उपयोग में शुद्धात्मा का मंथन करते-करते तुझे अवश्य शुद्धात्मा की अनुभूति होगी... तेरा मोह नष्ट हो जायेगा और आनंद का द्वार खुल जायेगा।

* समयसार की टीका करते हुए अमृतचंद्र स्वामी कहते हैं कि—इस समयसार की व्याख्या से अर्थात् समयसार में शुद्धात्मा के जो भाव कहे हैं, उन भावों के ज्ञान में बारंबार मंथन से, आत्मानुभूति शुद्ध होती है।

* देखो, इसमें टीका रचते समय शास्त्र की ओर का जो शुभ विकल्प है, उस विकल्प की मुख्यता नहीं है, परंतु उसी समय विकल्प से भिन्न जो ज्ञान शुद्धात्मा की ओर कार्य कर रहा है, उस ज्ञान के बल से परिणति की शुद्धता होती है। विकल्प का जोर नहीं, ज्ञान का ही जोर है। विकल्प के जोर से शुद्धि होना माने, उसे तो समयसार की खबर ही नहीं है। भाई, समयसार का अभ्यास अर्थात् शुद्धात्मा की भावना; समयसार तो रागादि से भिन्न शुद्ध एकत्वरूप आत्मा बतलाकर उसकी भावना करने को कहता है और ज्ञान को अंतर्मुख करके शुद्धात्मा की ऐसी भावना, वही अनुभूति की शुद्धता का कारण है।

* 'समयसार' में हमारा जोर विकल्प पर नहीं है, विकल्प से पार हमारा जो एक ज्ञायकभाव, वही हम हैं, उसी में हमारा जोर है। जो श्रोताजन ऐसे ज्ञायकस्वभाव की ओर लक्ष देकर समयसार का श्रवण करेंगे, उनकी परिणति भी शुद्ध होगी ही—ऐसा वचन है। इसप्रकार वक्ता और श्रोता दोनों के मोहनाश के लिये इस समयसार की रचना है। इसलिये हे भाई! तू विकल्प में खड़े रहकर मत सुनना; बीच में विकल्प आये, उस पर जोर मत देना, परंतु समयसार के वाच्यरूप जो शुद्धात्मभाव हम कहना चाहते हैं, उस 'भाव' को लक्ष में लेकर उस पर उपयोग का जोर देने से तेरा मोह नष्ट हो जायेगा और तेरे आनंद का द्वार खुल जायेगा।

* हे भव्य! इस समयसार का श्रवण करते हुए तू अंतर में शुद्धात्मा के ही लक्ष का मंथन करते रहना, उसका मंथन करते-करते परिणति भी शुद्ध हो जायेगी। आचार्यदेव कहते हैं कि—समयसार की टीका रचते समय हमारी परिणति में तो अपने परमात्मतत्त्व का ही मंथन चलता रहता है; परिणति अंतर में शुद्धस्वरूप के साथ केलि करती है; विकल्प है, उसमें हमारी परिणति का जोर नहीं है। पहले से ही विकल्प और चेतना की भिन्नता का जोर है; इसलिये विकल्प के समय भी ज्ञान में तो ऐसा आता है कि मैं विकल्प से भिन्न चैतन्यभाव हूँ;—इसलिये ज्ञानपरिणति विकल्प से भिन्न होकर चैतन्य स्वभावोन्मुख होती जाती है और शुद्ध होती जाती है। ऐसा इस समयसार के मंथन का फल है।

* आचार्य भगवान कहते हैं कि इस समयसार द्वारा हम शुद्ध आत्मा बतलायेंगे। जिस शुद्धात्मा का हमने अनुभव किया है, वह हम इस समयसार में प्रगट करेंगे; इसलिये तुम भी शुद्धात्मा के ही लक्ष से समयसार को सुनना। अन्य सबसे लक्ष हटाकर अंतर में शुद्धात्मा में ही लक्ष को स्थिर करना... ऐसा करने से परमानंद का मार्ग तुम्हें अपने में दिखायी देगा... शुद्धात्मा की अनुभूति होगी और मोह का नाश हो जायेगा।

भगवान के मार्ग का समावेश ज्ञान में

* आत्मा स्वयं स्वत:सिद्ध ज्ञान है, और ज्ञान स्वयं स्वत:सिद्ध पुण्य-पाप, राग-द्वेषरहित है; उसमें स्वत: आनंद है परंतु दु:ख नहीं है। ज्ञानभाव अंतर में है, उसे पकड़ने से आत्मा वेदन में आता है और उस वेदन में राग-द्वेषादि समस्त विकार का अभाव है तथा अनंत गुण के शांतरस का सद्भाव है। ज्ञानस्वरूप तो विकाररहित शांत-शांत... है, वही मुक्ति का मूल है; उस ज्ञान के साथ महा आनंद—महासुख है। ऐसे अनंत गंभीर भावों से भरा हुआ ज्ञानतत्त्व है, वह आत्मा स्वयं ही है—वह मैं स्वयं ही हूँ।

* आत्मा ज्ञानमय है; उसके ज्ञानमय परिणामों में तो शांति होती है, वीतरागता होती है, महान आनंद और सुख होता है, चैतन्यप्रकाश होता है; ज्ञानपरिणाम में अशांति नहीं होती, राग-द्वेष नहीं होते, दु:ख नहीं होता, मोहांधकार नहीं होता। ऐसा चैतन्यतेज मैं हूँ—ऐसा जो अनुभव करता है, उसी को सम्यक्त्वादि वीतरागभावरूप सामायिक होती है। ऐसे ज्ञानभाव द्वारा ही भव का नाश और मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। इसलिये धर्मात्मा कहते हैं कि—अहा, ऐसा जो मेरा ज्ञान, उसी को मैं पूजता हूँ, उसी में नमता हूँ, उसी में स्वोन्मुख होकर एकाग्र होता हूँ।

* रागरहित मेरा जो ज्ञानस्वरूप है, वही सुंदर है, वही जगत में शिरोमणि है।—ऐसे ज्ञानरूप से आत्मा का अनुभव करना ही भगवान वीतराग का मार्ग है। भगवान के मार्ग का समावेश ज्ञान में है, राग में नहीं। ज्ञान तो राग का नाशक है, उत्पादक नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वयं रागरहित है।

* अहा, ऐसा ज्ञान! मात्र शुद्ध वीतरागी ज्ञान, सो मैं हूँ; ऐसी ज्ञान की अनुभूति में महा आनंद है और राग का अभाव है। अरे, स्वयं अपने ज्ञान का स्वीकार किये बिना उसमें एकाग्रता या निर्विकल्पता कहाँ से होगी? आनंद का धाम तो मैं स्वयं हूँ, ज्ञान का धाम भी स्वयं हूँ। इस जगत में आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाल पूज्य है, उसमें ज्ञान को युक्त करके, ज्ञान द्वारा मैं अपने ऐसे स्वभाव की पूजा करता हूँ। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी उपासना-सेवा-पूजा ज्ञान द्वारा ही होती है, शरीर द्वारा या राग द्वारा उसकी पूजा नहीं होती। शरीर से और राग से भिन्न होकर ज्ञान में एकाग्र होना ही ज्ञान की आराधना है, वही मुक्ति का उपाय है।●●

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रात:काल 8से 9 बजे तक श्री नियमसार के शुद्धोपयोग अधिकार पर तथा दोपहर 2 से 3 बजे तक श्री समयसारजी के जीव-अजीव अधिकार पर स्वामीजी के भाववाही प्रवचन हो रहे हैं। प्रात:काल जिनमंदिर में जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा सायंकाल भक्ति का कार्यक्रम भी नियमितरूप से चलते हैं। विशाल परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य चल रहा है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष माननीय श्री नवनीतलाल जवेरी पिछले तीन-चार महीने से अस्वस्थ थे। अब उनका स्वास्थ्य काफी सुधर गया है और पूज्य स्वामीजी के सत्संग का लाभ लेने हेतु दिनांक 9-12-71 को सोनगढ़ पधारे हैं।

❀ ❀ ❀

सागर (म.प्र.) में

जैनधर्म शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन

तारीख 14-11-71 को सुबह 8बजे एक विशाल जुलूस निकाला गया, जिसमें हजारों भाई-बहिनों ने भाग लिया था। वह जुलूस मोराजी में 9 बजे आया; फिर वहाँ श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री बनारस के करकमलों द्वारा वीतरागी शिक्षण-शिविर का उद्घाटन श्री पंडित खेमचंदभाई की अध्यक्षता में हुआ। उदघाटन के बाद श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री ने वीतराग शिक्षण-शिविर के विषय में सभा को संबोधित किया। बाद में श्री पंडित खेमचंदभाई ने श्री समयसार की गाथा 412 पर आधा घंटा प्रवचन किया तथा नित्य ही प्रवचन उसी पर होता था। प्रवचन सुनकर लोग गदगद हो गये और कहने लगे कि ऐसी वीतरागता की वाणी आज तक हम लोगों ने सुनी नहीं। रात्रि को 8बजे बाहर से आये हुये सभी विद्वानों का शिक्षण शिविर-समिति द्वारा स्वागत किया गया तथा उनका परिचय दिया गया। प्रतिदिन सुबह 9 बजे पंडित श्री हुकमचंदजी मोक्षमार्गप्रकाशक में से 'निश्चय-व्यवहाराभासी' का प्रकरण

उत्तम कक्षा में चलाते थे और दोपहर में श्री पंडित खेमचंदभाई प्रश्नोत्तरमाला भाग-2 में से 'उपादान-निमित्त' का प्रकरण उत्तम क्लास में चलाते थे। जघन्य क्लास में श्री नेमिचंदभाई, श्री चिमनभाई जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा छहढाला पढ़ाते थे तथा बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3 की कक्षायें रात्रि को लगती थीं। उत्तम क्लास, जघन्य क्लास तथा बालबोध पाठमाला 1-2-3 भाग—इन सब क्लासों में करीब 2000 विद्यार्थी जिनमें स्त्री-पुरुष तथा बच्चे अध्ययन कर रहे थे। ये क्लासें तीन स्थानों पर प्रतिदिन चलती थीं।

रात्रि को श्री समयसार की 73 वीं गाथा पर श्री पंडित हुकमचंदजी के द्वारा प्रवचन होता था; जिसमें जैन और अजैनों की लगभग 5-6हजार की संख्या में उपस्थिति रहती थी। विरोध किसी प्रकार का नहीं था। सब भाई-बहिन बड़े उत्साहपूर्वक क्लासों में एवं प्रवचनों में आते थे। श्री पंडित दयाचंदजी सिद्धांतशास्त्री, श्री पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य, श्री पंडित मुन्नालालजी समगोरया तथा पंडित श्री मुन्नालालजी रांधेलीय आदि स्थानीय सभी विद्वान एवं 25 त्यागीगण भी प्रतिदिन सब कार्यक्रमों में उपस्थित होते थे तथा बाहर से लगभग 1500-2000 मुमुक्षु भाई-बहिन आये थे। बाहर से आये हुए त्यागी एवं मुमुक्षु भाई-बहिनों की ठहरने की व्यवस्था श्री वर्णी भवन मोराजी में रखी गई थी तथा पंडित श्री खेमचंदभाई आदि सभी विद्वानों को सेठ भगवानदासजी के यहाँ ठहराया था।

श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री द्वारा दोपहर में 1 घण्टा शंका-समाधान होता था। लोगों की सब प्रकार की शंकाओं का वे सरल पद्धति से निराकरण करते थे। यहाँ के लोग कहते हैं कि सागर का महान भाग्य है जो ऐसी आध्यात्मिक बातें इन महान विद्वानों के द्वारा सुनने को मिली हैं।

यहाँ की जनता के मुँह से सदा यही सुनने को मिल रहा है कि पूज्य गुरुदेव के पुण्य-प्रताप से अध्यात्मा का ऐसा भव-निवारक तत्त्व पूर्णरूप से सरलता के साथ हमें सुनने को मिला है; सब वातावरण से ऐसा लगता था कि—इस भौतिकवादी जगत में यह अपूर्व आध्यात्मिक क्रांति भव्यों के महामंडल की घोषणा है।

रात्रि में श्री पंडित दयाचंदजी सिद्धांतशास्त्री, श्री पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य, श्री समाजरत्न पंडित जयकुमारजी सिंगोड़ी (छिंदवाड़ा) तथा श्री पंडित जगन्मोहनलालजी

शास्त्री कटनी आदि विद्वानों के प्रवचन होते थे। श्री पूज्य स्वामीजी को चरण वन्दन।

—भगवानदास शोभालाल

❀ ❀ ❀

शिक्षण-शिविर की सफलता के समाचार देते हुए सागर से श्री सेठ भगवानदास शोभलालजी ने दिगम्बर जैन स्वाध्यामंदिर ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष माननीय श्री रामजीभाई को एक पत्र लिखा, जो निम्नानुसार है—

सागर (म.प्र.)
तारीख 25-11-71

आदरणीय श्री रामजीभाई, सादर शुद्धात्म सत्कार।

शिक्षण-शिविर के समाचार भेजे थे सो मिले होंगे। यहाँ पर शिक्षण-शिविर से जैन समजा को बहुत ही लाभ हुआ है और वे लोग कहते हैं कि पंच-कल्याणक में भी इतना लाभ लोगों को नहीं होता जितना कि इस शिक्षण-शिविर से हुआ है। यहाँ की जैन समाज तथा बाहर से आये हुए मेहमान सभी कार्यक्रमों में समय पर उपस्थित होकर विद्वानों की बातें एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं। एक दिन यहाँ की समाज की मांग पर श्री पंडित फूलचंदजी सि. शास्त्री तथा श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री ने सर्वज्ञ वीतराग कथित क्रमबद्ध पर विवेचन किया था। क्रमबद्ध का विवेचन सुनकर लोगों की बहुत सी भ्रमणायें दूर हो गई हैं; तथा एक दिन पंडित हुकमचंदजी शास्त्री ने पुरुषार्थ किसे कहते हैं, इसका विवेचन करके लोगों को पुरुषार्थ का वास्तविक स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोग गद्‌गद् हो गये थे।

माननीय श्री पंडित बाबूभाईजी फतेपुरवाले तारीख 22 को आ गये थे तथा श्री पंडित युगलजी कोटा से आज आ गये हैं। यहाँ की समाज ने पंडित खेमचंदभाई से रुकने की विनती करके उन्हें रोक लिया है, वे अब यहाँ से तारीख 24 को हवाई जहाज द्वारा निकलकर राजकोट जायेंगे। यहाँ पर तारीख 25-26को श्री तारणस्वामी की जन्म-जयंती मनाई गयी, जिसकी अध्यक्षता श्री खेमचंदभाईजी ने की थी।

प्रात:काल के प्रवचन में 3-4 हजार तथा क्लास में 3 हजार की संख्या रहती है।

प्रतिदिन रात्रि को प्रवचन-सभा में 9-10 हजार लोग एकत्रित होते हैं। रात्रि को कार्यक्रम दो घंटा लगातार चलता है। श्रोतागण भी दो घंटा तक बराबर सुनते हैं और किसी प्रकार का शोरगुल नहीं होता। यहाँ आसपास के गाँवों से भी बहुत लोग आ रहे हैं। जैसे-जैसे शिक्षण-शिविर की प्रसिद्धि सुनते हैं, जो लोग झुंड के झुंड बनाकर सागर में शिक्षण-शिविर का लाभ ले रहे हैं। शिक्षण-शिविर तारीख 28 को समाप्त हो रहा है।

परम कृपालु गुरुदेव का प्रभावना-उदय जयवंत हो... यही भावना है। गुरुदेव को हम सबका कोटि-कोटि वंदन।

भवदीय,

भगवानदास शोभालाल

❀ ❀ ❀

जसवंतनगर (इटावा-उ.प्र.)—हमारे विशेष आमंत्रण पर श्री पंडित धन्नालालजी पधारे। पाँच दिन तक प्रतिदिन छह घंटे का प्रोग्राम रहता था। आध्यात्मिक प्रवचनों के अलावा, धार्मिक शिक्षण एवं शंका-समाधान आदि होते थे। समाज को खूब लाभ हुआ है। —मंत्री

❀ ❀ ❀

मैनपुरी (उ.प्र.)—ब्रह्मचारी पंडित रमेशचंद्रजी के आगमन से धर्मप्रचार का अच्छा कार्य हुआ। यहाँ सात दिगम्बर जिनमंदिर तथा जैनों के 50 घर हैं। अनेक लोगों ने नियमित स्वाध्याय का नियम लिया है। श्री मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ की 75 प्रतियाँ स्वाध्याय हेतु मंगवाई हैं। यह स्थान पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी के गुरु पंडित बंसीधरजी की साधनास्थली रहा है। —सिद्धशरण जैन

❀ ❀ ❀

शिकोहाबाद (उ.प्र.)—यहाँ ब्रह्मचारी पंडित रमेशचंद्रजी पधारे और अच्छी धर्मप्रभावना हुई। पंडितजी प्रतिदिन टेपरील द्वारा पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनाते थे तथा स्पष्टीकरण करके समझाते थे। शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम भी होता था।

❀ ❀ ❀

भोगाँव (उ.प्र.)—में भी ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी के पधारने से यहाँ के समाज ने उनके कार्यक्रमों से अच्छा लाभ लिया।

❀ ❀ ❀

आकोला (महा.)—यहाँ ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी गोरे के आगमन से स्वाध्याय-मंडल की स्थापना हुई है तथा धार्मिक शिक्षण हेतु पाठशाला भी खुल गई है। इसप्रकार वासीम, मालेगाँव (जहाँगीर), मराठावाड में भी ब्रह्मचारीजी द्वारा अच्छी जागृति आयी है और जगह-जगत पाठशालाएँ खुल रही हैं। पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों को टेपरीलों तथा तीर्थयात्रा की फिल्मों द्वारा अध्यात्म का अच्छा प्रचार हो रहा है। ब्रह्मचारीजी प्रवचनों का स्पष्टीकरण भी करते हैं और शंका-समाधान का कार्यक्रम भी रखते हैं। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर सोनगढ़ के अध्यक्ष श्री नवनीतलालजी जवेरी की ओर से ब्रह्मचारी महाराष्ट्र में अच्छा प्रचार कर रहे हैं। लोगों में धार्मिक ज्ञान का खूब प्रसार हो रहा है, समाज में धर्म के प्रति उत्साह बढ़ रहा है। —मदन सावजी अटाले।

—: नये प्रकाशन :—

— **श्री समयसार**—(चतुर्थ आवृत्ति)—भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत महान आध्यात्मिक ग्रंथ। इस आवृत्ति में श्लोकों के अर्थ भी बढ़ा दिये गये हैं। बढ़िया कागज पर द्विरंगी सुंदर छपाई, पक्की जिल्द; पृष्ठ संख्या 650; मूल्य 7-50; पोस्टेज अलग।

[नोट—यह शास्त्र जयपुर, बम्बई, कलकत्ता, भोपाल, इंदौर, सागर, विदिशा, आगरा, उदयपुर, आदि शहरों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल से भी प्राप्त हो सकेगा।]

— **अपूर्व अवसर**—(चतुर्थ आवृत्ति)—श्रीमद् राजचंद्रकृत आध्यात्मिक काव्य पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन। साथ में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत द्वादशानुप्रेक्षा, समाायिक लघुपाठ, स्व. पंडित गुमानीरामजीकृत समाधिमरण स्वरूप पर पंडित बुधजनजी के दोहे; श्री पंडित जयचंदजी छाबड़ा कृत बारह भावनाएँ आदि का उत्तम संग्रह है। माँग बहुत होने से यह चौथी आवृति श्री सेठी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित की गई है। पृष्ठ संख्या 177; सजिल्द मूल्य 1-65 पै. विक्रयार्थ मँगानेवालों को दस प्रतिशत कमीशन भी दिया जायेगा।

— **जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग 3**—(छठवीं आवृत्ति) यह पुस्तक जैनधर्म शिक्षण शिविरों में पाठ्यपुस्तक के रूप में चलती है; जिससे खूब मांग रहती है। पृष्ठ संख्या 134; मूल्य 1-10 विक्रयार्थ मँगानेवालों को दस प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा। प्रकाशक - श्री सेठी ग्रंथमाला बम्बई है।

— **अमृतवाणी**—(द्वितीय आवृत्ति) पृष्ठ संख्या 120; मूल्य 1-10 पैसे ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित।

— **अध्यात्मवाणी**—(द्वितीय आवृत्ति) पृष्ठ संख्या 120; मूल्य 1-00; ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित। कुछ ही प्रतियाँ शेष हैं।

— **सत्तास्वरूप**—(आधुनिक हिन्दी में प्रथमावृत्ति) श्री पंडित भागचंदजी छाजेड़ कृत सुंदर रचना। साथ में श्री पंडित टोडरमलजी कृत गोम्मटसार की प्रस्तावना तथा पंडित गुमानीरामजी कृत समाधिमरण स्वरूप को भी सम्मिलित किया गया है। सुंदर कागज और छपाई। डेमी साइज में पृष्ठ संख्या 110। इसका प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, सनावद (म.प्र.) ने किया है।

पुस्तकें मिलने का पता:—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[—टाइटिल पृष्ठ 2 का शेषांश]

और जहाँ ऐसे स्वसंवेदनरूप ज्ञानधारा प्रगट हुई वहाँ जो वाणी का प्रवाह निकला उसे भी द्रव्यश्रुतरूप सरस्वती कहा जाता है; ऐसे भावश्रुत और द्रव्यश्रुतरूप जो वीतरागी सरस्वती, उसे हम उपासते हैं; मुनि भी उसकी उपासना करते हैं और हम भी उपासते हैं; वह हमारे दुरित को हरो!

अहा, ज्ञानी गुरुओं के उपदेश द्वारा हमने शुद्धात्मा को जाना, गुरु ने हमें ज्ञानचक्षु प्रदान किये, हमारी ज्ञान की आँखें, गुरु ने खोलीं और अज्ञान का अनादि-अंधकार दूर किया। ऐसे श्रीगुरु को हम नमस्कार करते हैं। जहाँ आत्मा की प्रतीति हुई वहाँ देव-गुरु के प्रति परम उपकार का ऐसा भाव आता है।

ऐसे मंगल पूर्वक अपूर्वभाव से समयसार का प्रारंभ होता है। अहा, यह समयसार तो आत्मा के स्वभावरूप धर्म का संबंध करानेवाला है। पर का तथा राग का संबंध तुड़वाकर, आत्मा के स्वभाव में एकत्व कराके धर्म का संबंध कराता है। अहा, आत्मा को परमात्मरूप से प्रगट करें अर्थात् परमात्मस्वभाव का अनुभव करायें—ऐसे समयसार के मंत्र हैं। कुन्दकुन्द भगवान जैसे वीतरागी संतों के यह मंत्र मोह के विष को उतार देते हैं और वीतरागी अमृत के पान द्वारा चैतन्य को जागृत करके परमात्मस्वरूप प्रगट करते हैं।

— ऐसे इस शास्त्र पर आज सत्रहवीं बार प्रवचन प्रारंभ होते हैं।

जय समयसार!

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-2)	4.50
8	समयसार प्रवचन (भाग-4)	4.00
9	मुक्ति का मार्ग	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
12	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
13	समयसार पद्यानुवाद	0.25
14	नियमसार (हरिगीत)	0.25
15	द्रव्यसंग्रह	0.85
16	छहढाला (सचित्र)	1.00
17	अध्यात्म-संदेश	1.50
18	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
19	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
20	दशलक्षण धर्म	0.75
21	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
22	मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय)	0.50
23	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
24	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
25	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75
26	सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित)	1.10
27	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
28	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
29	अध्यात्मवाणी	1.00
30	अमृतवाणी	1.10
31	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
32	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
33	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.50
34	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
35	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
36	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
39	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
40	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
41	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
42	'' '' (भाग-2)	8.00

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)